(सर्वाधिकार सुरक्षित)

http://www.jainkosh.org

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

पञ्चास्तिकाय प्रवचन

चतुर्थ, पंचम व षष्ठ भाग

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सर्राफ,

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको

भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७५ लागत [१३) रु०

Version 1

सहजानंद शास्त्रमाला

पंचास्तिकाय संग्रह प्रवचन

भाग-4

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

आत्म-कीर्तन

http://www.jainkosh.org

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

°°°○○°°°

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।

२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।

३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।

४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।

५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पञ्चास्तिकाय प्रवचन चतुर्थ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

"अजीवाधिकार"

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू ।
इदि ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥७४॥

अजीवाधिकारमें पुद्गलद्रव्यका वर्णन व आत्मप्रयोजन—इस ग्रन्थमें पूर्व रंगके बाद जो मुख्य वक्तव्य था जीवास्तिकायका, उसका वर्णन किया । अब उस ही जीवास्तिकायमें शुद्ध सुदृढ़ स्थिति करनेके लिए जिन पदार्थोंसे हमें हटना है उन पदार्थोंका वर्णन इस अजीवाधिकारमें किया जा रहा है । अजीव वह है जो जीव नहीं है । जीव वह है जो मेरे द्वारा मेरेमें सहज अनुभव होता है । उस अजीव तत्त्वके, उस अजीव अस्तिकायके चार भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश । कालद्रव्य अस्तिकायमें नहीं है, लेकिन वह भी अजीव है । उनमेंसे पुद्गल द्रव्यास्तिकायके वर्णनमें यह पहिली गाथा है । पुद्गलद्रव्य स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु—इस प्रकार चार भेद वाले हैं । इनका संक्षेपमें अर्थ है जो भी एकप्रदेशी पुद्गल है परमाणु वह तो है और उससे बढ़कर जो अनेक परमाणुवोंका पुञ्ज है, किन्तु किसी विवक्षित स्कंधके आधेसे आधा है कमसे कम, उसका नाम स्कंध प्रदेश है, और जो विवक्षित स्कंध से आधा है उसका नाम है स्कंधदेश, और जो स्कंध विवक्षित है वह स्कंध है ।

भौतिकवादमें पृथ्वीका लक्षण—इस प्रसंगमें कुछ दार्शनिकोंने चार चीजें मानी हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु । जो कुछ भी ये दृश्यमान हैं वे सब इन चारोंमें शामिल हैं । उनमें जो कुछ भी मैटर है, दृश्य हों अथवा न हों, किसी प्रकार इन्द्रियसे ज्ञात हों वे सब चार प्रकारके हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु । वनस्पतिका शरीर भी पृथ्वी है उस दर्शनमें ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो पिण्डरूप हों, जिसमें गंध हों वे सब पृथ्वीकाय हैं, यह उनका पृथ्वीका लक्षण है। वनस्पतिकाय पिण्डरूप है, इसमें गंध है, ये सब दृश्य हैं। मनुष्यका शरीर, पशु-पक्षियोंका शरीर ये सब पृथ्वी हैं। कभी जलमें बास आने लगती है, सड़ गया जल, गंध आती है तो वह गंध जलकी नहीं है, किन्तु उस जलसे जो और पृथ्वी मिली हुई है वह सड़ गयी है उसकी गंध है। व्यवस्था अपनी सीमामें यह भी अच्छी है।

भौतिकवादमें जल, अग्नि, वायु तत्त्वका लक्षण—जलका लक्षण है जिसमें रस हो। किसी पृथ्वीका टुकड़ा खाकर, फल वनस्पति खाकर रसका स्वाद आता है तो जो रस है वह तो जल है और जिसमें गंध है वह पृथ्वी है। अग्नि तत्त्वमें रूप रहता है। जो रूप है वह अग्नि तत्त्व चीज है और वायुमें स्पर्श रहता है। जिसमें स्पर्श हो वह वायु है। सब कुछ दृश्य और अदृश्य इन चारोंमें गर्भित हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। और इसी कारण दुनिया में केवल चार ही तत्त्व हैं, ५वीं चीज कुछ नहीं है।

भौतिकवादमें प्रयोजन—यह चार्वाक या चारुवाक दर्शनकी चीज चल रही है। चारु मायने मीठा, वाक मायने बोलना, जो बहुत मीठा बोले उसका नाम चारुवाक है। भला बतलावो ये वचन किसे पसंद न होंगे ? जहाँ कहा कि दुनियामें केवल ४ चीजें हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। जीव, आत्मा कुछ नहीं है। ये चारों मिलकर एक ऐसी बिजली चलती है कि इसमें जानने जैसी कला आ जाती है, और जब यह बिखर जायेंगे तब वह भी कुछ न रहेगा। इसलिए जब तक यह जीवपना है तब तक खूब खावो, पीवो, चाहे कर्जा भी लेना पड़े, खाने-पीनेमें कसर न रखो, खूब आराम भोगो। खूब इसे शरीरको पुष्ट करो, खूब मौज करो। ऐसी बातें आप लोगोंको सुहाती हैं कि नहीं ? शायद न सुहाती हों, पर जिन्हें ये वचन सुनावेंगे उन्हें बड़े प्रिय लगेंगे। तो ऐसे सुन्दर मीठा बोलने वालेको चारुवाक कहते हैं। लेकिन तर्क शास्त्रपर जरा कसकर तो निरखो।

जातिकी लक्षणपद्धति—जातिका लक्षण वही सही है जहाँ जो लक्षण अपनी समग्र जातिकी व्यक्तियोंमें तो रहे और उसके अतिरिक्त अन्यमें न रहे। क्या कोई सदृशता ऐसी है जो इन चारोंमें पायी जाय। एक तो यह खोज कीजिए। दूसरे यह देखिये कि पृथ्वी, जल तो नहीं बन जाता, कभी जल वायु तो नहीं बन जाता, कभी वायु जल तो नहीं बन जाता, कभी पृथ्वी आग तो नहीं बन जाती। अगर बन जाय तो फिर ये चारों अलग-अलग जातिके ठहरे। जो पदार्थ जिस तत्त्वमें है वह पदार्थ कभी भी अपनी जातिको छोड़कर अन्य रूप नहीं बन सकता। लेकिन दिखनेमें तो यह सब कुछ आ रहा है। पृथ्वी आग बन जाती है, जल हवा बन जाता, हवा पानी बन जाती। इस कारण चारों स्वतंत्र तत्त्व नहीं हैं। वर्तमान सीमाके लिए तो किसीको भी जाति बना सकते। गेहूं भी पचासों जातिके होते हैं। मनुष्य भी हजारों

Version 1

जातिके होते हैं। अपनी सीमामें आने प्रयोजनके लिए जातिका कुछ भी लक्षण बना लो संकुचित, लेकिन मूल जाति, मूल लक्षण तो नहीं होगा जो सबमें व्यापे और उन्हें छोड़कर अन्यमें न व्यापे। और साथ ही उन व्यक्तियोंमें अपने आपमें अदल-बदल तो हो जाय, मगर अन्यसे अदल-बदल न करे। जातिका मूल लक्षण ऐसा ही होगा।

पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुके कायकी पौद्गलिकता—ये चारोंके चारों रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं। ऐसा नहीं है कि पृथ्वीमें केवल गंध हो, जलमें केवल रस हो, अग्निमें केवल रूप हो और वायुमें केवल स्पर्श हो। यद्यपि शीघ्रतासे जो कुछ ग्रहणमें आता है वह इस ही प्रकार प्रायः आता है, लेकिन पृथ्वीमें गंधके अलावा स्पर्श भी नजर आता है, रस और रूप भी नजर आता है। जिसमें प्रत्यक्षसे दूसरा कोई नहीं ज्ञात होता है वहाँ भी शेष गुण हैं। हवामें स्पर्श है तो रूप, रस और गंध भी है। अग्निमें रूप है तो रस, गंध और स्पर्श भी है। जलमें रस है तो गंध, रूप, स्पर्श भी है। जहाँ इन चारों गुणोंमें एक भी गुण पाया जाय वहाँ चार ही रहते हैं। ये चारों चीजें एक पुद्गल जातिमें गर्भित होती हैं। पुद्गलका यह लक्षण है कि जो मिलकर बड़ा हो जाय और बिखरकर हल्का हो जाय उसे पुद्गल कहते हैं, देखो यह लक्षण इन चारोंमें घटित हो जाता है। पृथ्वीके स्कंध भी मिलकर बड़े हो जाते हैं और बिखरकर सूक्ष्म हो जाते हैं, ऐसे ही जल, अग्नि और वायुमें भी वही पद्धति है। ये चारों पुद्गल जातिमें हैं और इसी कारण जल वायु बने, वायु जलका रूप रख ले, ये सब परिवर्तन हो सकते हैं। जातिके जातिमें परिवर्तन हुआ करते हैं, विजातीय रूपसे परिवर्तन नहीं होता। यों ये सब एक पुद्गल जातिमें आते हैं।

पृथिव्यादि तत्त्वोंका परस्पर व्यक्तिपरिवर्तन—एक अनाज जौ होता है, उससे बहुत हवा बनती है। यद्यपि वह पशुवोंके खानेकी चीज है, पर बहुतसे मनुष्य भी उसे खाते हैं। वह जो चार्वाकदर्शनमें पृथ्वी है। जौ खा लेनेपर हवा बहुत बनती है और हवा खिरती भी है। पेटमें गुड़गुड़ाहट हो, नीचे ऊपर पेटमें आवे जावे तब यह मनुष्य उसमें पीड़ा मानता है। वह वायु खिरती है, तो उस जौ के दानेमें यदि स्पर्श न होता तो उस दानेमें कभी यह वायुके रूपमें यह स्पर्श न आ सकता था याने जल वायु न बन पाती। जंगलमें बांस खड़े रहते हैं, उनकी रगड़से स्वयं ही उनमें आग पैदा हो जाती है। तो उनमें यदि रूप तत्त्व न होता, अग्नितत्त्व न भरा होता तो यह अग्नि कहाँसे प्रकट होती? चन्द्रकान्तमणिसे जल ढलने लगता है और आजके वैज्ञानिक तो जलसे हवा, हवासे जल यह प्रकट आविष्कृत कर दिया करते हैं तो ये जातियां स्वतंत्र नहीं हैं।

जीवतत्त्वकी महाभूतोंसे विभक्तता—अब जीवतत्त्वपर दृष्टि दो तो विदित हो जायगा कि यह जीव इन चारोंके संघर्षसे उत्पन्न नहीं होता है। ये चारों ज्ञानरहित हैं। ज्ञानरहित ४ क्या अनन्त जुड़ जायें तो भी ज्ञानरहित अनन्तके प्रयोगसे ज्ञान वाली वस्तु उत्पन्न नहीं हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकती। यह ज्ञान वाली वस्तु, जीवतत्त्व इन चारोंसे पृथक् है।

अजीवोंमें पुद्गलद्रव्यके प्रथम वर्णनका प्रयोजन—इन अजीव पदार्थोंमें सर्वप्रथम वर्णन पुद्गलद्रव्यका इसलिए करते हैं कि हम आपकी पहिचान अधिकतर पुद्गलके साथ है। धर्म अधर्म आदिकके तो कोई नाम भी नहीं जानते होंगे। कुछ ही लोग समझते हैं। आकाश कालकी तो चर्चा ही क्या करें? इनसे कुछ सुधार बिगाड़ नहीं होता। हमारा काम तो सब पुद्गलके आश्रयसे चल रहा है और इस समय जितना सुख अथवा दुःख माना हैं वह सब पुद्गलद्रव्यके कारण माना है। पुद्गलद्रव्यके आलम्बनसे जितने भी परिणमन होते हैं वे सब क्लेशरूप होते हैं। उस क्लेशरूप परिणमनके कल्पनावश दो भाग कर दिए हैं—एक सुख और एक दुःख। दोनों ही वस्तुतः क्लेश हैं। वह सुख क्या सुख है जिसके बाद फिर दुःख हो? अज्ञानी लोग मोहमें रागमें बँधे पड़े हैं और कुछ विषयोंके साधन पुण्यानुकूल मिल गए हैं तो उनमें मस्त हो रहे हैं, अपना बड़प्पन महसूस करते हैं। परवस्तुवोंके प्रति व्यामोह करके अपनेको लोग सुखी मानते हैं, किन्तु इस सुखके बाद एकदम अचानक विपरीत दशा आयगी। उसमें यह बड़ा दुःख अनुभव करेगा और जितना सुख माना था उससे कई गुणा दुःखी होना पड़ेगा। इस सुखके फलमें निकट भविष्यमें दुःखी होंगे नियमसे और भविष्यमें दुःखी होंगे, इतनी ही बात नहीं किन्तु वर्तमानमें भी जब यह मोही सुख अनुभव कर रहा है तो वह क्षोभपरिणामको लिए हुए रहा करता है। यह क्षोभ ही क्लेश है। तो हमारे सुधार बिगाड़में इन पुद्गलोंका सम्बन्ध और असम्बन्ध कारण पड़ता है, इस कारण जीवतत्त्वके बाद पुद्गलद्रव्यका वर्णन किया जाता है।

कायप्रकारोंके वर्णनका प्रयोजन तात्कालिक भेदप्रदर्शन—जाति अपेक्षा चारुवाकों ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार भेद किए हैं। उस दृष्टिसे कायके भेद किए जायें तो ६ होते हैं—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, बनस्पतिकाय और त्रसकाय। पृथ्वी से जैसे जल, अग्नि वायु नहीं मिलते जुलते हैं, इनका भेद प्रकट नजर आता है ऐसे ही त्रस-काय और वनस्पतिकायका भी प्रकट भेद नजर आ रहा है। क्या पेड़का शरीर व हमारा शरीर एक ही प्रकारका है? उनमें फर्क है, अंगोपाङ्गका फर्क है, कोमल नरमका फर्क है, इसमें हड्डी है उसमें नहीं। अनेक तरहके भेद हैं। तो इस दृष्टिसे ये ६ भेद हुआ करते हैं। और यदि मिलाना है एक मानना है तो एक माननेके भी अनेक उपाय बन सकते हैं और वैसे तो ऐसा निरखने लगो कि यह आदमी उल्टा पेड़ है। पेड़ोंमें ऊपर शाखायें होती हैं और नीचे जड़ें होती हैं। पेड़ नीचेकी जड़ोंसे जल हवा इत्यादि खींचकर आहार करते हैं और इस मनुष्यकी शाखायें ये पैर और हाथ हैं और यह शिर जड़ हैं। इस जड़से अर्थात् मुखसे अन्न जलका आहार करता है। तो किसीको किसीमें मिलाना है, एक करना है तो चलो पेड़को

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
और आदमीको भी एक किया जा सकता है। फर्क इतना है कि पेड़ सीधा है और आदमी उल्टा है तो यों अटपट कुछ एकता करनेकी बात और है, पर सही-सही मायनेमें विवेकपूर्वक भेद किया जाय तो मूल तो सब पुद्गल हैं। ये छहों काय सभी पुद्गल हैं, पर इनका परस्पर में तात्कालिक भेद समझमें आये उस दृष्टिसे ये ६ भेद हैं।

पुद्गलके पिण्डरूपमें प्रकार—ये पुद्गल कभी स्कंधरूपसे परिणमते हैं और कभी स्कंध देश पर्यायसे परिणमते हैं, कभी स्कंध प्रदेश पर्यायसे परिणमते हैं और कभी परमाणुरूप से ही इस लोकमें ठहरा करते हैं, इन चार विकल्पोंके सिवाय अन्य गति पुद्गल कायकी नहीं है। भेद करनेके कुछ प्रयोजन हुआ करते हैं। और जो प्रयोजन रखकर भेद किया जाता है उसके अनुसार भेद होता है। यह प्रयोजन केवल पुद्गल द्रव्यसे अपनेको हटाने और आत्मतत्त्वमें लगनेका है। हटानेकी बात सीधी एक व्यक्ति व पिण्डरूपसे हुआ करती है। हटनेका जब लक्ष्य होता है तो जिससे हटना है उसे पिण्डरूपमें, व्यक्तिरूपमें निरखा जाता है। हटो जी, इसे हटावो। कोई चीज बेस्वादकी बन गयी है, मानो खीर कड़ुवी हो गयी है, विरस हो गई है इस कारणसे वह अनिष्ट हो गयी। मगर जिस समय कोई उसके प्रति यों बोलता है कि इसे हटावो, तो उस समूचेको पिण्डरूपमें निरखकर कहता है। यद्यपि प्रयोजन विरसता का है मगर क्या यों कहते हैं कि इसकी विरसता हटावो। वह तो समूचे उस पिंडको ही कहता है कि इसे हटावो। तो पुद्गलद्रव्यसे हमें हटना है तब हम वहाँ एक पिंडरूपसे तक रहे हैं। इस कारण ये चार भेद पिण्डके भेदसे किये गए हैं। जो पूर्णपिंड है वह स्कंध है और जो उसका आधा है वह स्कंधदेश है। उसका आधा बने तो स्कंध प्रदेश है। अब इसके बीच में भी उन्हें समझ लो और एकप्रदेशी परमाणुमात्र रह जाय तो वह परमाणु कहलाता है।

परमाणुमें द्रव्यत्वकी यथार्थता—यद्यपि वस्तुतः एक परमाणु ही पुद्गलद्रव्य है, क्योंकि एक कहते उसे हैं जिसमें कोई भी परिणमन जिस पूरेमें होना ही पड़े और जिससे बाहर कभी न हो, वह एक चीज होती है। जैसे कोई कपड़ेका एक छोर जल रहा है, बाकी अभी नहीं जल रहा है तो वह कपड़ा एक नहीं है। एक वही होता है कि उस ही समयमें वह परिणमन जितने पूरेमें होना ही पड़ता है। इस दृष्टिसे एक पुद्गल परमाणु ही वास्तवमें द्रव्य है। जो कुछ भी होगा वह उस ही समयमें पूरेमें होगा ही। जैसे कि आत्मा एकप्रदेशी है, हम आप सब एक-एक हैं, किन्तु जब विचार सुख दुःख राग ज्ञान जो कुछ भी परिणमन होता है उस कालमें वह परिणमन इस पूरे समग्र आत्मामें होता है और इससे बाहर कहीं अन्य जगह नहीं होता। ऐसे ही इस पुद्गलमें परिणमन जहाँ हो पूरा हो और जिससे बाहर कभी न हो वह एक है। यों वस्तुतः पुद्गलद्रव्य तो परमाणु ही है, किन्तु जो पूरे और गले अर्थात् जिसमें पूरण और गलनका स्वभाव है उसे पुद्गल कहते हैं। इस पुद्गलत्वको दृष्टिमें रखकर
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये सभी स्कंध पुद्गल कहलाते हैं और इसे उपचारसे पुद्गल कहा जाता है। जीवोंमें ऐसा नहीं होता कि कोई जीव मिलकर एक बन जाय। अन्य द्रव्यमें भी ऐसा नहीं होता कि वे बहुतसे मिलकर एक बन जायें, किन्तु पुद्गलमें यह बात पायी जाती है कि वे बहुतसे मिलकर एक पिण्ड बन जाते हैं। यों पिण्डकी दृष्टिसे ये चार प्रकारके विकल्प किए गये।

पौद्गलिक प्रकरणसे प्राप्तव्य शिक्षा—इस प्रकरणको पढ़कर हमें इतनी शिक्षा लेनी है कि ये सभी तत्त्व पुद्गल हेय हैं। उपादेयभूत अनन्त आनन्दमय शुद्ध जीवास्तिकायसे इन सबका विलक्षण स्वरूप है, इनसे मेरा हित नहीं, ये सब पृथक् हैं, ऐसा जानकर उनकी उपेक्षा करके एक निज शुद्ध जीवास्तिकायमें उपयोग लगाना चाहिए और यह उपयोग लग सकेगा शुद्ध जाननमात्र स्वरूपको उपयोगमें लगानेसे। हम इन पुद्गलद्रव्योंकी उपेक्षा करें और ज्ञान-मात्र निज जीवास्तिकायमें उपयोगी बनें।

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥७५॥

चतुर्विध पुद्गलोंका संक्षिप्त स्वरूप—इस गाथामें पुद्गल द्रव्यके जो पहिले चार भेद किए गये थे उनका स्वरूप है। अनन्त परमाणुवोंका मिलकर जो पिण्ड होता है अथवा जो विवक्षित पिण्ड होता है उसे स्कंध कहते हैं और उस पुद्गल स्कंधका आधा भाग स्कंध देश कहलाता है और उस स्कंध देशसे भी जो आधा भाग है वह स्कंध प्रदेश कहलाता है और जिसका दूसरा भाग न हो सके उसका नाम पुद्गल परमाणु है।

परमाणुवोंके संघातका कारण—मूलमें तो पुद्गल परमाणु है जो कि स्वतंत्र एक पुद्गलद्रव्य है और वह एकप्रदेशी है। सभी पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं, इस कारण पुद्गल परमाणुमें भी उसमें उत्पाद हो, व्यय हो, ध्रौव्य हो, यह तो बन गया। पदार्थमें छह साधारण गुण हैं अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व और प्रमेयत्व। इन गुणोंके कारण जैसी सभी द्रव्योंकी व्यवस्था है वैसे ही पुद्गलकी व्यवस्था है। पदार्थमें यह शक्ति पड़ी है कि वह पदार्थ है तथा वह अपने रूपसे है, पररूपसे नहीं। तीसरी बात—यह पदार्थ सदैव परिणमता रहता है। चौथी बात—वह अपने ही गुणोंमें परिणमता है परके गुणोंमें नहीं परि-णमता। ५वीं बात अपने प्रदेश रखता है, चाहे कितने ही प्रदेश हों और छठवीं बात—किसी न किसी ज्ञानके द्वारा यह प्रमेय है। इन ६ साधारण गुणोंके कारण जैसे अन्य पदार्थ परिण-मते रहते हैं, बने रहते हैं, ऐसे ही ये पुद्गल परमाणु भी परिणमते रहते हैं, और बने रहते हैं। इन ६ साधारण गुणोंमें ऐसा कोई गुण नहीं नजर आया जिससे यह अवस्था बने कि कुछ परमाणु मिलकर स्कंध बन जाते हैं। स्कंध बननेका कारण यह साधारण गुण नहीं है स्कंध होनेका कारण है, योग्य स्निग्ध और रूक्ष परिणमन। कैसी प्राकृतिकता है कि कोई पर-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माणु स्निग्ध है, कोई रूक्ष है, उसमें २ गुण अधिक हों तो वे परमाणु परस्परमें बँध जाते हैं।

बन्धन——लकड़ियोंका गट्ठा बाँध दिया, वह बंधना क्या बंधना है ? वहाँ तो वे प्रकट न्यारी-न्यारी हैं। बंधी हुई हालतमें भी उन्हें गिन लो। घासका बंधा हुआ गट्ठा है वह बंधना क्या बन्धना है ? यद्यपि घास इस तरह मिली हुई है कि आप उसे गिन नहीं सकते फिर भी वह बंधना क्या बंधना है ? दूध और पानी एक भी मिल जायें तो भी वे अलग-अलग हैं। यंत्रों द्वारा उन्हें अलग-अलग जान लिया जाता है। वह दूध और पानीका बंधना भी क्या बंधना है ? बन्धन तो परमाणु परमाणुवोंका है। स्निग्ध रूक्ष गुणके कारण जो परमाणुवोंमें बन्धन होता है वह ऐसा विकट बन्धन होता है कि जो हीन गुण वाले परमाणु हैं वे अपने गुण परिणमनको छोड़कर जो कि पहिले था दूसरेके अनुरूप परिणम जाता है। जैसे कोई परमाणु २२ डिग्रीका स्निग्ध है और कोई परमाणु २० डिग्रीका रूक्ष है, अब इन दोनोंका बन्धन होनेसे जो भी पिंड बनेगा वह साराका सारा स्निग्ध परिणमन वाला बनेगा, इसका नाम है बन्धन। ऐसा अन्य पदार्थमें कहीं नहीं है कि कोई पदार्थ किसी पदार्थसे मिल गया तो उस बंधनके कारण कोई पदार्थ बिल्कुल अपना रूप ही बदल दे। यहाँ परमाणुवोंका स्कंध बन जाता है। तो अणुवोंसे स्कंध बन जाय यह मिलनेसे हुआ करता है।

स्कन्धकी उत्पत्ति——स्कन्धकी उत्पत्ति संघातसे होती है, पर कहीं स्कंधोंमें ऐसा भी हो जाता है कि कुछ परमाणु विघट रहे हैं और कुछ मिल रहे हैं तो इस स्थितिमें भी स्कंध बनता है इसे कहते हैं भेदसंघात याने उभय। संघातसे भी स्कंध होता है और भेदसंघातसे भी स्कंध होता है, पर भेदसे स्कंध नहीं होता है, क्योंकि भेदमें अलग ही अलग करनेकी बात है। अब जब तक एक परमाणु है तब तक परमाणु है, जहाँ २ परमाणु मिले तो उसका नाम स्कंधप्रदेश हो गया। आगे स्कन्धदेश फिर स्कन्ध भी हो जाता है।

पुद्गलोंकी चतुर्विधताका एक लोकदृष्टान्त——अब कोई भी विवक्षित पदार्थको दृष्टान्त में ले लो। चौकी, कपड़ा, घड़ा कुछ भी दृष्टान्तमें ले लो, वह अनन्त परमाणुवोंको मिलकर स्कंध बना हुआ है। वह तो है स्कंध और जब बिखर-बिखरकर वह आधा रह जाय, आधे परमाणु अलग हो जायें तो उसका नाम होता है स्कंधदेश। अब स्कंधदेशसे ऊपर और उस समस्त स्कंधसे नीचे बीचमें जितने भी स्थान होंगे वे सब स्कंध कहलायेंगे। अब उस आधे स्कंधसे विघटकर उसका भी आधा रह जाय तब उसका नाम है स्कंधप्रदेश। इस स्कंधप्रदेशसे ऊपर और स्कंधदेशसे नीचे जितनी भी उस पिण्डकी हालतें हैं वे सब स्कंधदेश कहलायेंगे और स्कंधप्रदेशसे नीचे एक परमाणुसे ऊपर जितने भी विकल्प होंगे वे सब स्कंधप्रदेश होंगे।

गणनात्मक पद्धतिसे पुद्गलोंका एक दृष्टान्त——पुद्गलके इन भेदोंको समझनेके लिये एक दृष्टान्त लो। जैसे कोई १६ परमाणुवोंका पिण्ड रूप स्कंध है यह स्कंध आँखों दिख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकता है क्या ? वह तो दूरबीनसे देखनेपर भी नजर न आयेगा। दूरबीनसे देखनेपर अनन्त परमाणुवोंका पिण्ड ही नजर आ पायगा। अच्छा तो गणनासे ऊपर असंख्याते परमाणुवोंका पिण्ड हो तो नजर आयगा क्या ? वह भी नजर न आयगा। अनन्त परमाणुवोंका पिण्ड दृष्टिगोचर हुआ करता है, पर दृष्टान्तमें १६ परमाणुवोंका पिण्ड लिया जाय जल्दी हिसाब लगे इसलिए। तो १६ परमाणुवोंका पिण्ड स्कंध कहलाया और एक-एक परमाणु उसमेंसे खिरें और जब तक ९ परमाणुवोंका पिण्ड रहे तब तक वह स्कंध है। ८ परमाणुवोंका पिण्ड होनेपर वे स्कंधदेश हो जाते हैं। अब उसमें भी एक-एक परमाणु जुदा हो और जब इसके ५ परमाणुवोंका पिण्ड रहे तब तक वे सब विकल्प स्कन्धदेश कहलाते हैं। जब ४ परमाणुवोंका पिण्ड हो जाय तो उसका नाम स्कन्धप्रदेश है। सो दो अणुवोंके पिण्ड तक स्कंधप्रदेश कहलाते हैं। पर परमाणु अविकारी होते हैं।

पदार्थकी अविभागिता—जो अविभागी हो वह एक सत् कहलाता है। जैसे हम आप एक-एक जीव हैं ये सब अविभागी हैं। ऐसा न होगा कि इसका जीव आधा तो यहाँ रहे और आधा कहीं दूसरी जगह चला जाय। समुद्घात अवस्थामें आत्माके प्रदेश शरीरका आधार न छोड़कर बाहर भी फैल जाते हैं, लेकिन शरीरसे लेकर बाहर जहाँ तक भी फैला है तहाँ तक वे सब द्रव्य एक अखण्ड रहा करते हैं। कोई छिपकलीकी लड़ते-लड़ते पूंछ कट जाय तो पूंछ बाहर तड़फती है और देहका आधा भाग बाहर तड़फता है। इसका कारण है कि अभी वेदना की वजहसे पूंछ तक उसके प्रदेश पड़े हैं, लेकिन ऐसा नहीं है कि कुछ प्रदेश पूंछमें हैं, कुछ प्रदेश शरीरमें हैं और बीचमें कुछ नहीं है। अरे उस शरीरसे लेकर पूंछ तक बराबर उस आत्माके प्रदेश हैं। यह जीव अविभागी है, इसका दूसरा विभाग नहीं होता। जिसके दो भाग हो जायें वह एक पदार्थ नहीं है। वह दो पदार्थ मिलकर एक पिण्ड हुआ था।

एककी अविभागिता—कोई भी हिसाब अत्यन्त मूलमें अविभागी रहा करता है। जैसे गिनतीमें सबसे पहिला अंक है एक, वह एक अविभागी है, एकका आधा नहीं होता। व्यवहार में लोग एक रुपयेको आधा रुपया कहते हैं, पर उस आधेका अर्थ रुपयाका आधा नहीं है, किन्तु ५० पैसोंका समूह है। वह एक फलित होनेसे जल्दी जबानपर यही चढ़ा है—आधा रुपया। जो एक होता है वह एक कभी आधा नहीं हो सकता। तो जैसे इस रकममें मूलद्रव्य में चीज है एक पैसा तो एक पैसेका आधा नहीं हो सकता और हो जाय तो अभी मूल नहीं रहा। छदाम दमड़ी या जो भी हो, जो भी मूलमें एक अविभाग होगा वह एक ही रहेगा, उसका आधा नहीं हुआ करता है। तो द्रव्यमें भी जो द्रव्य होगा वह अखण्ड है, अखण्डके विभाग नहीं हो सकते। यह सब कथन बनाया हुआ नहीं है, कोई कहीं गोष्ठी करके प्रस्ताव किया हुआ नहीं है, कुछ कल्पना किया हुआ नहीं है। पदार्थ जैसा अवस्थित है उस पदार्थको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस रूपसे रखनेका यह प्रयत्न है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अपने प्रदेशोंको, गुणोंको, पर्यायोंको लिए हुए अपनेमें अविभागी रहा करता है। यह परमाणु पुद्गलद्रव्य है।

लोकोंका भिन्न रुचित्व—किन्हीं पुरुषोंको पुद्गलद्रव्यकी चर्चा बहुत सुहाती है और आत्मद्रव्यकी चर्चा नहीं सुहाती है और किन्हीं पुरुषोंको आत्मचर्चा सुहाती है, पुद्गलकी चर्चा नहीं सुहाती है। इस धर्मके प्रकरणमें कुछ ऐसा लग रहा होगा अनेक भाइयोंको कि यह रूखा है। जब जीवकी बातें चलती थीं तो वे ही बातें ६ महीने तक चलीं, वही गुणपर्याय, वही जीवकी चीज, भेदविज्ञानकी बात रोज-रोज कहते गये हैं, थोड़ा कुछ शैलीमें अन्तर है, लेकिन वे बातें ६ महीने रुचिकर हुईं, और यह पुद्गलद्रव्यकी चर्चा है, यह रूखी मालूम हो रही है, लेकिन जिनको अन्तस्तत्त्वमें रुचि नहीं है, ऐसे बड़े-बड़े लोग, वैज्ञानिक लोग जो बड़ा आविष्कार करते हैं, रेडियो, बेतारके तार, राकेट, एटम आदि सूक्ष्म आविष्कार करते हैं तो उनकी तो प्रेक्टिकल उसमें पुद्गलकी चर्चा है और उसमें वे बड़े प्रसन्न होते हैं, अपनेको बड़ा सफल समझते हैं, रात-दिन चित्त उसीमें रहता है। उस पुद्गलकी चर्चामें उनका मन खूब लगता है और उनके अतिरिक्त शेष जीव भी सूक्ष्म पुद्गलकी चर्चा चाहे न जानें, किन्तु पुद्गलके प्रसंगमें उनका बड़ा मान रखा करता है। आत्मचर्चाके मननमें मन कहाँ रमा करता है? किन्तु जो अध्यात्मरुचिके पुरुष हैं उनकी इस आत्माकी चर्चामें, आत्माके ज्ञान द्वारा स्पर्श करनेमें, इस ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वके निकट पहुंचनेमें चूंकि रागद्वेष मोहका भार हट जाता है थोड़े कालके लिए इस कारण एक विलक्षण आनंदानुभव हुआ करता है। फिर भी हमें जिन पदार्थोंसे हटना है उन पदार्थोंका बोध किये बिना वह स्पष्टता नहीं आती कि हम भली प्रकार सुदृढ़ स्थितिसे उनसे हट जायें। इस कारण जीवास्तिकायके सिवाय अन्य तत्त्वोंका भी वर्णन करना आवश्यक है।

पुद्गल वर्णनमें अल्पसे महानकी ओर—अब जिस तरह एक स्कंधसे लेकर परमाणु तक समझनेके लिये एक पद्धति बतायी थी, अब जरा परमाणुसे लेकर स्कंध तक भी समझने की पद्धति देखिये एक परमाणु है अविभागी वह तो अणु है और दो परमाणुओंके संघातका जब मेल होता है तो वह द्व्यणुक स्कंध कहलाता है। बहुतसे द्व्यणुक, त्र्यणुक सभी तरहके स्कंध हैं और उनमें उनके स्निग्ध रूक्ष गुणोंमें उनकी शक्तियोंमें हीनाधिकता होती रहती है, और जब योग्य सम्बन्ध मिल जाय तो वे बँध जाते हैं।

द्व्यधिक गुणोंके बन्धनके कारणका एक अनुभव—दो अधिक गुण वाले परमाणु ही क्यों बँधते हैं? इस सम्बंधमें स्पष्ट कारण तो देखनेमें नहीं आया, पर कुछ युक्ति और अंदाज इस प्रकारका किया जा सकता है कि जहाँ लोकमें हम यह देखते हैं कि दो पुरुषोंका सम्बन्ध मित्रता होती है तो उन दो पुरुषोंमें अधिक अन्तर न होना चाहिए प्रकृतिका। जैसे एक बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सच बोलता हो और एक बहुत झूठ बोलता हो तो क्या उनका मित्रत्व सम्बंध रह सकता है ? तो यह नहीं हो सकता है, क्योंकि बहुत अधिक अन्तर होनेसे निकटता नहीं आ सकती। अच्छा यदि बिल्कुल समान हो, यदि रंच भी फर्क न हो, ऐसी स्थिति हो तो वहाँ पर भी मित्रता नहीं होती। बिल्कुल समान स्थितिमें ? बिल्कुल समान स्थितिमें ऐसी परि-स्थिति बन जाती है कि वह अपने घरका, वह अपने घरका। सम्बन्ध न बढ़ सकेगा। यदि अधिक अन्तरमें भी सम्बन्ध नहीं बनता, बिल्कुल समानमें भी सम्बन्ध नहीं बनता तो निष्कर्ष यह निकला कि कमसे कम अन्तर हो वहाँ सम्बन्ध बन सकता है, यह एक थोड़ी सी खोज है, युक्ति है। तो उन परमाणुवोंमें दोनोंमें कमसे कम अन्तर रहना चाहिए और वह कमसे कम अन्तर उतना रहना चाहिए कि उसका मिलाप होनेके बाद जो गुणोंका टटोल हुआ उसका पूर्ण आधा-आधा भाग देखनेको मिले। वह अंतर दोका ही सम्भव है। यह एक कुछ थोड़ासा समझनेके लिए कहा है। असलियत क्या है ? वह तो उन परमाणुवोंकी ऐसी प्राकृतिकता है। तीन परमाणुवोंका मिलकर त्र्यणुक स्कन्ध होता है। इस तरह लगाते जाइए अनन्त परमाणुवों तक, वह स्कंध है तो जैसे संघात संघात होकर अनेक स्कंध बन जाते हैं ऐसे ही भेदसंघात मिलावके द्वारा भी स्कन्ध बन जाते हैं।

पुद्गलोंकी विस्तृत चर्चाका प्रयोजन—पुद्गलोंकी इतनी विस्तृत चर्चा करनेका प्रयो-जन इतना ही है कि हम यह जान जायें कि उपादेय तो हमारे लिए हमारा आत्मतत्त्व है, उस आत्मतत्त्वसे भिन्न ये सब पुद्गलद्रव्य हैं। इनमें लगनेसे, उपयोग देनेसे कोई प्रयोजन नहीं है, प्रत्युत जितना आलम्बन इस पुद्गलका रहेगा उतने ही यहाँ विकार हैं और इसके क्लेश हैं। निकट भव्य जीव इन सबसे पूर्णरूपसे नाता तोड़कर अपने आपके केवल स्वरूपमें समस्त शक्ति लगाकर लग जाया करते हैं और वे ही सहज आनन्दका अनुभव किया करते हैं। कर्म-बन्धन भी वहाँ ही टूटता है और वे मुक्ति पदको प्राप्त करते हैं। समस्त पुद्गलोंसे भिन्न यह मैं अमूर्त निरञ्जन ज्ञानमात्र, प्रतिभासात्मक आत्मतत्त्व हूं—इस प्रकार भिन्न रूपसे अपने आपके आत्माका परिज्ञान कर लेना, यही उन सब पुद्गलोंके वर्णनका प्रयोजन है। इन परतत्त्वोंके वर्णनके समय हम उनसे निवृत्त होनेकी पद्धतिसे अपने आपकी झांकी लेते रहें, इस ओर मुड़ते हुए अपने आपमें प्रसन्न रहा करें, यही एक हितके लिए कर्तव्य है। हम बाह्य पुद्गलोंके प्रसंग से उनकी किसी परिणतिको निरखकर भीतरमें विषाद न करें, किंकर्तव्यविमूढ़ न बन जायें, जो है सो है, उसके ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी स्थिति बनायें इस ही में शान्तिका मार्ग मिलेगा।

वादरसुहुमगदाणं खंधाणं पुग्गलोत्ति ववहारो।
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥७६॥

स्कन्धमें पुद्गलत्वका व्यवहार—वादर और सूक्ष्म इन दो प्रकारोंमें और प्रभेदोंमें

Version 1

प्राप्त हुए स्कन्धोंको ये पुद्गल हैं, ऐसा व्यवहार किया जाता है। स्कन्धोंमें पुद्गलका व्यपदेश व्यवहारसे है। जिन स्कन्धोंके द्वारा ये समस्त तीनों लोक निष्पन्न हुए हैं ये स्कन्ध ६ प्रकारके हैं। इस गाथामें यह बताया है कि पुद्गलके जो दो प्रकार किए गए हैं—परमाणु और स्कन्ध, उनमें परमाणु तो सही सीधा पुद्गल द्रव्य है, किन्तु स्कन्ध जो परमाणुवोंमें मेलसे बनता है उसमें स्कन्धपना व्यवहारसे कहा गया है।

परमाणुमें पुद्गलत्व—पुद्गलका अर्थ है पूरण और गलन स्वभाव वाला। पुद्गलका अर्थ पूरण है और गलनका अर्थ गलन है। परमाणुमें पाये जाने वाले स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणोंके द्वारा उनमें ही जो वृद्धि-हानि चलती हैं उन वृद्धि-हानियोंसे पूरण और गलन होता रहता है और उनमें स्कन्धकी व्यक्तियोंका आविर्भाव होता है तथा स्कंधकी व्यक्तियोंका तिरोभाव होता है। इस कारण उनमें भी पूरण गलन होता है। यों परमाणु पुद्गल कहलाते हैं। यहाँ एक विशेष बात यह दिखायी है कि पुद्गलका तो अर्थ पूरण और गलका अर्थ गलन है, और पूरण गलन स्कंधोंमें सम्भव है। मिल गए तो पूरण हो गया और बिखर गए तो गलन हो गया। प्रत्येक पुद्गलमें पूरण गलन होता है।

परमाणुमें पूरण गलन—यहाँ यह बतलाते हैं कि मूलमें वास्तविक पूरण गलन तो पुद्गलमें होता। कैसे ? पुद्गल पुद्गल न्यारे-न्यारे हैं, उनका मिलान हो गया, पूरण हो गया अथवा उनका बिछुड़ना हो गया, एक-एक परमाणु रह गये, गलन हो गया। तो इस प्रकारसे स्कंध बननेकी शक्तिका आविर्भाव होता है और स्कन्धकी व्यक्तिका तिरोभाव होता है। इस कारण पुद्गलमें पूरण और गलन बन गया। एक तो दृष्टि यह है और दूसरी दृष्टि यह बतायी है कि पुद्गलमें एक-एक परमाणुवोंमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण गुण हैं, परमाणुमें ४ में से कोई दोका स्पर्श रहा करता है एक साथ। स्निग्ध रूक्ष शीत उष्णमें इन चारमें दो रहा करते हैं—स्निग्ध रूक्षमें एक और शीत उष्णमें एक। पुद्गलमें हल्का भारी कोमल कठोर ये नहीं हैं, ये स्कंधोंमें ही समाये हैं। और ५ प्रकारके रसोंमें से एक रस खट्टा, मीठा, कडुवा, तीखा, कषैला इनमेंसे कोई एक—यों तीन गुण हुए, तीन पर्यायें हुईं। गंधमें से एक गंध, वर्णमें एक वर्ण, इस तरह परमाणुमें एक साथ ५ गुणपर्यायें होती हैं तो उन पर्यायोंमें वृद्धि-हानि निरन्तर चलती रहती है, उसको षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि कहते हैं। इनसे उसमें पूरण गलन विदित कर लिया जाता है।

पदार्थके गुणपरिणमनोंमें प्रतिसमय हानि-वृद्धि—किसी भी चीजमें वृद्धि हमें मालूम पड़ी तब जाना कि वृद्धि हुई है, पर मालूम करनेसे पहिले जो विदित भी न हो सके उस सीमा में तो वृद्धि है। जैसे कोई बालक ७ वर्षका है, और बढ़कर जब ८ वर्षका है तो एक वर्ष बाद मालूम पड़ता है कि यह ० अंगुल बढ़ गया है, पर उसकी वृद्धि रोज-रोज हो रही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, घंटे-घंटेमें हो रही है, मिनट-मिनटमें हो रही है, प्रति सेकेण्ड हो रही है, और चलो तो समय-समयपर हो रही है। यदि प्रति समय उसकी वृद्धि न होती तो एक वर्ष बाद भी वृद्धि नहीं हो सकती। ऐसे ही उसके साथ हानि भी चल रही है। तो यों वृद्धि और हानि इन गुणोंमें निरन्तर चलती रहती है। उन गुणविशेषोंसे कभी उनमें पूरण होता है, कभी गलन होता है।

पूरण गलनका प्रायोगिक आधार—यहाँ एक शंका रक्खी जा सकती है कि ऐसा पूरण गलन तो सभी पदार्थोंमें है। जीवमें ज्ञानादिक जितने गुण हैं उन गुणोंमें भी वृद्धि-हानि प्रति समय चलती है। ज्ञान बढ़े, ज्ञान घटे, इस बढ़ाव-घटावमें और रूपमें डिग्री बढ़ा दिया, घटा दिया, इसी प्रकार इस मूर्तिक गुणकी वृद्धि-हानि होती रहती है। मूर्तकी वृद्धि-हानिमें जो अन्तर है वह अन्तर पुद्गलकी ओर तो पूरण गलनके लिए झुकता है, किन्तु जीवमें पूरण गलनका परिणमन नहीं होता है। तो यों पूरण गलन स्वभाव होनेसे पुद्गल परमाणु वास्तव में पुद्गल हैं, किन्तु स्कंध अनेक पुद्गलके मिलकर एक पर्याय होनेसे पुद्गलसे अभिन्न ही तो है, परमाणुवोंसे जुदा भी नहीं है, वह स्कंधदशा इस कारण स्कंध पुद्गल कहलाता है और वह व्यवहारनयसे पुद्गल कहलाता हैं।

पुद्गलत्वका निर्णय व व्यवहार—जैसे शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे ज्ञान, दर्शन इसका शुद्ध प्राण है—ज्ञान दर्शन चैतन्यप्राण करके यह जीव जीवित है, इसलिए जीव वास्तवमें चैतन्यभावसे रखनेके कारण जीव है, और इस दृष्टिसे तो जो सिद्ध भगवान हैं वे ही जीव कहलाते हैं व्यक्त रूपसे, क्योंकि वे निर्लेप और शुद्ध प्राणोंकर जीवित रहते हैं। किन्तु व्यवहारसे फिर आयु आदिक जो अशुद्ध प्राण हैं, दश प्राण हैं उन १० प्राणोंसे जो जीवित होते हुए रहते हैं वे जीव हैं और फिर गुणस्थान मार्गणा आदिक अनेक विस्तार हो जाते हैं तो उसमें जीवत्व व्यवहारसे कहियेगा और सिद्धमें जीवत्व निश्चयसे कहियेगा। लोकव्यवहारसे हम जिन पर्यायोंको, संसारी जीवोंको जीव कह रहे हैं उनमें भी स्वभावतः वे शुद्ध चैतन्यप्राण रहते हैं। ऐसे ही व्यवहारसे हम पुद्गल कहते हैं स्कन्धको। स्कन्धस्थितिमें परमाणुवोंका सत्त्व परमाणुवोंका निजस्वरूप फिर भी एक शुद्ध स्थितिके कारण वस्तुतः है, फिर भी इस अशुद्ध स्थितिमें एक प्रकट मिलानको व्यवहारमें स्कन्धपुद्गल कहा जाता है।

पुद्गलोंके अवगमका प्रयोजन भेदविज्ञान—पुद्गलादिक पदार्थों सम्बन्धी ये सब बातें भेदविज्ञानके काममें आती हैं। इन सबको जानकर यदि भेदविज्ञानका लक्ष्य नहीं चलता है तो हम इतना ज्ञान करके भी न ज्ञान करनेकी तरह रहे, क्योंकि ज्ञानका प्रयोजन है आनन्द। जिसको शुद्ध आत्मीय आनन्द प्रकट हो ऐसी जानन परिणतिको वास्तवमें ज्ञान कहते हैं। ये पुद्गल, ये सूक्ष्म, ये वादर अनेक प्रकारके स्कंधोंसे यह मैं आत्मा भिन्न हूं और केवल अमूर्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
ज्ञानानन्द स्वरूप हूं। जब भावात्मक निजस्वरूपपर दृष्टि पहुंचेगी तब इसका आनन्द प्रकट होगा और तब इस स्पष्टरूपसे विदित होगा कि इस मेरे स्वरूपके अतिरिक्त अन्य जितने भी समागम हैं वे सब भिन्न हैं।

वादरवादर तथा वादर स्कन्ध—अब इन पुद्गलोंको ६ प्रकारके रूपोंमें दिखा रहे हैं। ये सब स्कंध ६ प्रकारके हैं—वादरवादर, वादर, वादरसूक्ष्म, सूक्ष्मवादर, सूक्ष्म और सूक्ष्मसूक्ष्म। जो पिंड ऐसे हैं कि छिद जायें और फिर अपने आप जुड़नेमें असमर्थ हैं वे सब वादरवादर कहलाते हैं। जैसे काठ पत्थर इत्यादि छिन्न होकर टुकड़े होकर फिर ये अपने आप नहीं जुड़ सकते। जैसे कि घी तेल दूध पानी ये अलग कर दिये जायें, छिन्न हो जायें और फिर मिल जायेंगे, तो ये अपने आप जुड़ जाते हैं और ये ऐसे मिल जाते हैं कि फिर इनमें विभाग नहीं कर सकते कि इतना यह दूध है और इतना यह पानी है। तो वादरवादर स्कंध वे हैं कि जो छिद जानेपर, अलग हो जानेपर स्वयं न जुड़ सकते हों और वादर वे कहलाते हैं कि छिद जानेपर जुदा हो जानेपर स्वयं संधानमें समर्थ हैं, स्वयं फिर पिण्ड रूप बननेमें समर्थ हैं। जैसे दूध, घी, तेल, रस आदिक।

वादरसूक्ष्म स्कंध—वादरसूक्ष्म वे हैं कि जो स्कंधरूपसे अवलोकनमें तो आते हैं, दिखते हैं, समझमें आते हैं, पर छेदन-भेदन और ग्रहण करनेमें नहीं आते हैं। जैसे छाया समझमें आ रही है यह है छाया, पर उसे उठाकर कोई जेबमें धर सकता है क्या ? या उस छायाके दो हिस्से करके कोई अलग-अलग कर सकता है क्या ? तो न छेदन हुआ, न भेदन हुआ, न ग्रहण हुआ, मगर स्थूल रूपसे उपलब्धिमें आ रहा है। धूप है, छाया है, अंधकार है ये सब वादरसूक्ष्म कहलाते हैं।

सूक्ष्मवादर स्कन्ध—सूक्ष्मवादर वह है कि जो सूक्ष्म होनेपर भी स्थूलरूपसे उपलब्धि में आता है। जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द सुननेमें आ रहे तो इनकी आप उपलब्धि तो कर लेते, किन्तु उन छाया, धूप वगैरासे भी ये शब्द सूक्ष्म हैं। रसका स्वाद आ गया, पर असलमें वह रस सूक्ष्म है इस छाया और धूप वगैराकी अपेक्षा भी। जिसे मुंहमें चबाते हैं वह रस नहीं है, वह तो पिंड है, वादरवादर है। रस तो वह है जो स्वादमें आया जो जिह्वाइन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह रस है, और देखो यह रस छाया आताप आदिकसे भी सूक्ष्म है। जैसे हम इन इन्द्रियोंमें स्पष्ट कैसे बतायें कि यह जिह्वा है ? असली जिह्वा याने रसना। जो स्वाद बतानेका काम करती है उसको कोई देख सकता है क्या ? कोई जिह्वा निकालकर कहे कि लो यह है असली जीभ तो वह असली जीभ नहीं है। जो चीज पकड़नेमें आये वह तो स्पर्श वाली चीज हुई। रस ग्रहण करने वाली चीज नहीं है। जो चाम है, पिंड है वह तो स्पर्श है। नासिकामें बतावो वास्तविक नासिका नजर आती है क्या ? जिस नासिकाको पक-
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ड़कर आप बतावोगे वह वास्तविक नासिका नहीं है, वह तो स्पर्श है। पकड़नेमें तो स्कंध आयगा तो जैसे इन इन्द्रियोंमें रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये सब गुप्त पड़े हुए हैं, समझमें आते हुए भी हम आप उनका विश्लेषण नहीं कर सकते। जैसे रसनाइन्द्रिय स्वादका काम करती है, ऐसे ही घ्राण, चक्षु और श्रोत्रके काम हैं, पर उन सभी इन्द्रियोंके द्वारा जो गम्य विषय है वह विषय, सूक्ष्म वादर है। स्थूल रूपसे उपलब्धिमें आकर भी अनुपलब्ध है।

सूक्ष्म व सूक्ष्मसूक्ष्म स्कन्ध—सूक्ष्म वह है जो सूक्ष्म है और इन्द्रियों द्वारा उपलब्धिमें नहीं आता। जैसे कर्मवर्गणायें। कर्मवर्गणायें सूक्ष्म हैं और न किसी भी इन्द्रियसे ज्ञानमें आती हैं। तो स्थूल तो हैं ही नहीं, उपलब्धिमें भी नहीं आतीं अत्यंत सूक्ष्म हैं। आगम और युक्तियों से गम्य हैं, और सूक्ष्मसूक्ष्म वर्गणावोंसे नीचे गलन होकर कम पिण्ड वाले बनकर सूक्ष्म चले जाते हैं द्विगुणित स्कंध तक। दो परमाणुवोंसे मिलकर जो स्कंध बना है वह सूक्ष्म-सूक्ष्म है। ये ६ भेद स्कंधके किए गये हैं, ये भेद केवल स्कन्धके हैं।

लोककी षट्स्कन्धनिष्पन्नता—पुद्गलके इन ६ प्रकारोंके स्कंधोंसे निष्पन्न यह लोक है। इसको किसी पुरुषने धारण नहीं किया है, न यह किसी विशेष पुरुषका बनाया हुआ है। कुछ लोग कहते हैं इन्हें किसीने धारण कर रक्खा है तब तो यह पृथ्वी बनी है। बहुतसे लोग कहते हैं कि इस पृथ्वीको शेषनागने धारण किया है, कोई लोग मानते हैं कि यह पृथ्वी कोई कीलीपर टिकी हुई है। चाहे किसीने इस पृथ्वीको धारण किया हो, न किया हो, पर कुछ अन्दाज तो हो ही जायगा इन बातोंसे भी कि यह पिण्डरूप चीज है, इसकी भी सीमा होगी। वादरवादर है यह पृथ्वी जो कि बहुत बड़ी है। पूरी पृथ्वीपर अपन जा भी नहीं सकते, लेकिन यह पिण्डरूप है, इसलिए इसका अन्त जरूर है। चाहे कितने ही बड़े विस्तारकी पृथ्वी है, पर किसी न किसी जगह उस पृथ्वीका अन्त है। केवल एक ओर ही नहीं, चारों ओर अन्त है। चाहे उसे कोई गोल माने, चाहे कोई चौकोर माने।

स्कन्धोंकी सादिसान्तता—जैनसिद्धान्तमें पृथ्वीको चौकोर कहा गया है थालीकी तरह नहीं, थालीकी तरह तो द्वीपसमुद्रकी रचना है, पर यह पहिली पृथ्वी एक मोटी बर्फीकी तरह चौकोर है, इसके ६ पाले हैं—ऊपर नीचेके दो और चारों दिशावोंके चार। ऐसी-ऐसी ये पृथ्वियां ७ हैं। इन सातों पृथ्वियोंमें नरककी रचना है। ऊपरकी इस पहिली पृथिवीमें पहिले नरककी रचना है। जिसके ऊपर हम आप लोग चलते हैं, इस पृथ्वीके तीन भाग हैं। नीचेके भागमें तो नारकियोंका निवास है, दो भाग हैं ऊपर, जिनमें भवनवासी और व्यंतर देवोंके निवास हैं, इसके ऊपरी तलपर हम आप रहा करते हैं। तो इस पृथ्वीका अन्त अवश्य है।

पृथ्वीका आधार—पृथ्वीके वादरवादरपना सिद्ध होनेपर यह शंका होगी कि ये सधे किस तरह हैं? तो इन समस्त पृथिव्योंके चारों ओर ५ दिशावोंमें तीन वातवलय हैं। ये

Version 1

वातवलय तीनों लोकके अन्तमें भी है और इन समस्त पृथ्वियोंके पांचों ओर भी हैं। उन वातवलयोंपर ये समस्त पृथ्वियाँ सधी हैं। वे वातवलय इतने दृढ़ हैं कि जिनपर ये महास्कंध अनादिसे ही इसी तरह चले आ रहे हैं। उन्हीं वातवलयोंका नाम शेषनाग रख लीजिए। शेष जो नाग है उसके आधारपर पृथ्वी है अर्थात् नागमें तीन शब्द हैं—न अ ग, ग मायने जो चले, गच्छति इति गः, जो चले सो ग है, न गच्छति इति अगः, जो न चले सो अग न अग अर्थात् जो चले नहीं ऐसा नहीं अर्थात् चले सो नाग, मायने जो निरन्तर चले सो नाग अर्थात् हवा, नाम मायने हैं हवा। जो शेष हवा है उसे कहते हैं शेषनाग। हवा जो लोकके अन्तमें, पृथ्वीके अंतमें, अपनेमें निरन्तर चलती रहती है उसे शेषनाग कहते हैं। हम आप सभी लोगों के काममें आने वाली है यह हवा उन हवाओंसे बची हुई अर्थात् लोकके अन्तमें शेष रूपसे पड़ी हुई हवाका नाम शेषनाग है।

प्रलयमें विध्वंसताका अभाव—कुछ लोग इसका प्रलय मानते हैं। यह है और सब एक दिन इसका प्रलय हो जायगा, कुछ भी न रहेगा, केवल एक आसमान रहेगा। ये स्कंध, ये पुद्गल ६ प्रकारके हैं, ये कहाँ जायेंगे जब प्रलय हो जायगा। प्रलयके मायने एक विध्वंस है, और विध्वंसका अर्थ यह है कि जो सही शकल है, ढंगका आकार है वह बिगड़ गया। यह ही इस विध्वंसका अर्थ है या सत्तासे बिल्कुल नष्ट हो जाय उसका नाम विध्वंस है ? ये सब बिगड़ जायेंगे इसका नाम विध्वंस है, प्रलय है। और प्रलयकी बात तो केवल भरत और ऐरावत क्षेत्रमें है, आर्यखण्डमें है जो जगह सारी जमीनके सामने एक बिन्दुकी तरह है। इन स्कंधोंका कभी अभाव न होगा।

लोकको अकृत्रिमता—इसी प्रकार कुछ लोग समझते हैं कि यह लोक किया जाता है। जैसे प्रलय नहीं होता इसी प्रकार इसका उत्पाद भी नहीं होता। जो सत् है उसका कभी लोप नहीं होता, ऐसे ही जो असत् है उसका कभी उत्पाद नहीं होता। इस लोकको किसीने किया नहीं है, न कोई धारे हुए है, किन्तु यह स्वयं सिद्ध अनादिसे ऐसा ही व्यवस्थित है। क्षेत्रकी अपेक्षा यह ३४३ घनराजू प्रमाण है, और स्कंधोंकी अपेक्षा यह सारा लोक ६ प्रकार के स्कंधोंसे भरा है, परमाणुवोंसे भरा है, और सर्वस्कंधोंको एक रूप लिया जाय तो उसे कहते हैं महास्कंध। उसका ही नाम लोक है। सभी जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल पदार्थोंका जो जोड़ है, योग है, पिण्ड है वह लोक है। आकाश लोकके भीतर भी है और लोकके बाहर भी है। इसी प्रकार यह समग्र लोक जो पिण्डरूपसे देखा गया है वह इन ६ प्रकारके स्कन्धों से बना हुआ है, और उसका मूल कारण परमाणु है।

परमाणुकी द्विविधता—परमाणुके सम्बंधमें भी दार्शनिकोंने दो भेद किए हैं—कारण परमाणु और कार्यपरमाणु। जैसे परमात्मतत्त्वके दो प्रकार हैं—कारणपरमात्मतत्त्व और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कार्यपरमात्मतत्त्व । संसारी जीवोंके संसार अवस्थामें जब हम उनके स्वभावपर दृष्टि देते हैं तो समझमें आता है कि संसार होकर भी इसमें कारणपरमात्मतत्त्व शाश्वत है, और जब यह परमात्मा बन गया, कार्यपरमात्मा हो गया उस कार्यपरमात्माके होते हुए भी जिस स्वभावकी व्यक्ति कार्यपरमात्मा निरन्तर बनती चली जा रही है वह कारणपरमात्मतत्त्व है, ऐसे ही इन स्कंधोंकी स्थितिमें कारणपरमाणुकी बात झट समझमें आती हैं । इसमें एक-एक परमाणु है और वे परमाणु मिलकर स्कंध बने हैं तो इसका कारणभूत परमाणु हैं, और वे परमाणु मिलकर बने हैं तो इसका कारणभूत परमाणु है । और जब यह परमाणुरूपमें व्यक्त हो जाता है केवल परमाणु रह गया उस समय भी कारणपरमाणुरूपता और कार्यपरमाणुरूपता बराबर बनी हुई है ।

लोकके अवगमका लाभ——इन परमाणु और स्कंधोंका जोड़ ये सब मिलकर जो पिण्ड है वह जितनेमें है सो यह एक लोक है । इस लोकमें ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहाँ इस जीवने अनन्त बार जन्म मरण न किया हो । उसका कारण है अपने स्वरूपका अज्ञान । देखो लोकविस्तारका विशद अवगम उत्तम धर्मध्यानका कारण है । इस कारण लोकका अवगम करना भी ध्यान व वैराग्यका कारण है । अब हम अधिकाधिक यत्न अपने स्वरूपकी ओर मुड़नेका करें, जिसके प्रतापसे यह संसारभ्रमण मिटे और मुक्ति प्राप्त हो ।

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ।।७७।।

परमाणुका स्वरूप——इस गाथामें परमाणुकी परिभाषा बतायी गयी है । समस्त स्कंधोंका जो अंतिम भेद है, अन्तिम विभाग हैं उसको परमाणु कहते हैं । वह परमाणु अविनाशी है और शब्दरहित है । जैसे कर्मस्कंधोंका जहाँ विनाश है उसे शुद्ध आत्मा कहते हैं, ऐसे ही ६ प्रकारके स्कंधोंका जहाँ अन्त है ऐसा जो भेद है उसे परमाणु कहते हैं ।

परमाणुकी शुद्धता—भैया ! शुद्धताकी दृष्टिसे जैसे सिद्ध भगवन्त हैं ऐसे ही परमाणु शुद्ध हैं, किन्तु हम सब कर्मोंके प्रेरे आकुलतासे भरे जन्म मरणकी पद्धतिमें लगे दुःखी जीव हैं, उस दुःखको मिटाना है तो जो दुःखरहित शुद्ध स्थिति है वह सिद्ध भगवानमें है, इसलिए हम आपके लिए सिद्ध भगवानकी महत्ता है, पूज्यता है, किन्तु वस्तुस्वरूपकी दृष्टिमें कोई ऐसा है नहीं अन्तर, जिससे यह विदित हो कि सिद्ध श्रेष्ठ हैं व अणु निकृष्ट हैं । कदाचित् हम सब जीवोंसे अलग कोई निर्णेता होता तो वह यह बताता कि जैसे परमाणु शुद्ध है तैसे ही शुद्ध सिद्ध हैं । जैसी सिद्धकी महत्ता है तैसी महत्ता परमाणुकी है । सिद्ध भगवानमें सिद्ध जैसा प्रताप है, तो परमाणुमें परमाणु जैसा प्रताप है । एक समयमें १४ राजू गमन हो जाना यह और किसके सम्भव है ? स्कंधोंमें नहीं होता । १४ राजू कितना बड़ा क्षेत्र है और के सारे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
प्रदेश भी क्रमसे ही तो छुवे गए होंगे। परमाणु नीचेसे ऊपर तक १४ राजू पहुंचते हैं। लेकिन वे इतनी शीघ्रतासे छुवे हुए होंगे कि एक ही समयमें १४ राजू गमन हो गया।

परमाणुकी सामायिक गतिपर प्रकाश—परमाणुकी सामायिक गतिके सम्बंधमें मोटी बात तो कुछ समझमें यह आ जायगी कि जैसे कोई एक पुरुष ६ घंटेमें ६ मील चलता है तो क्या कोई पुरुष ६ मील एक घंटामें चलने वाला नहीं मिल सकता? रास्ता उतना ही है, वह ६ घंटेमें चला, यह एक घंटेमें चला और ६ मीलका रास्ता कोई पुरुष दौड़कर जाय तो सम्भव है कि १५ मिनटमें भी ६ मील रास्ता जा सकता है और कोई यंत्र तो एक मिनटमें भी ६ मील जा सकता है, ऐसे ही कोई स्कंध घंटेमें १४ राजू पहुंचे, ये परमाणु एक समयमें १४ राजू पहुंच जाते हैं। ऐसा यह शुद्ध परमाणुका प्रताप है।

परमाणुकी शाश्वतता—यह परमाणु शाश्वत है। जैसे कि परमात्मा टंकोत्कीर्णवत् निश्चल एक ज्ञायकस्वभावसे एक द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे अविनाशी है इस ही प्रकार यह परमाणु भी पुद्गलपनेसे अविनाशी है। स्कंधोंका बिखरना हो जाता है। उनका विनाश समझ में आता है, पर स्कंधोंकी स्थिति हो तो, स्कंधोंसे विलग हो गया हो तो, परमाणुकी शाश्वतता सदैव रहती है। यह परमाणु नित्य है।

परमाणुकी मूर्तिमयता व अशब्दता—यह परमाणु अशब्द है। यद्यपि परमाणुमें रूप भी नजर नहीं आता पर परमाणु रूप सहित है। यदि रूप सहित न होता तो स्कंधकी स्थितिमें भी इसमें रूक्ष व्यक्त न होता। परमाणुमें रस, गंध, स्पर्श आदि हैं, पर शब्द परमाणु में नहीं हैं। शब्द एक परिणति हैं, पर्याय हैं और वे भाषावर्गणाके स्कंधोंकी परिणति हैं। जैसे शुद्ध जीव पदार्थ निश्चयसे स्वसम्वेदन ज्ञानका विषय होनेपर भी शब्दरूप नहीं होता, शब्दविषयक नहीं होता, वह जीवद्रव्य अशब्द है, इसी प्रकार परमाणु भी स्कन्धरूप परिणति का कारणभूत है। स्कंधोंसे ही तो शब्दकी उत्पत्ति हुई है और स्कंधोंके मूल परमाणु ही तो हैं। फिर भी शब्द पर्यायरूप परिणमन परमाणुका नहीं होता। परमाणुमें शब्दपरिणति प्रकट नहीं होती, इस कारणसे परमाणु शब्दरहित है।

परमाणुकी अद्वैतता—यह परमाणु एक है, केवल है, असहाय है, स्वयं है, परिपूर्ण है। जैसे कि शुद्ध आत्मद्रव्य समस्त परपदार्थोंके लेपसे रहित केवल चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व परकी उपाधिसे रहित होनेसे एक है, असहाय है, एक ही स्वरूप है, परिपूर्ण है। इस ही प्रकार यह परमाणु भी अन्य परमाणुकी उपाधि न रहनेसे अपने ही सत्त्वके कारण अपने ही स्वरूपमें परिपूर्ण एकप्रदेशी एक अणुमात्र रहनेके कारण केवल है, असहाय है, एक है। परमाणु अचेतन है, इस कारण उसकी पूजा हम लोगोंके चित्तमें नहीं समाती, लेकिन द्रव्यके नाते तो जैसी शुद्धता सिद्ध भगवानमें है वैसी ही शुद्धता परमाणुमें है। पर हमारा प्रयोजन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध भगवंतके ध्यानसे निकलता है। हाँ परमाणुके ध्यानसे भी ध्यानकी शुक्लता आती है, किन्तु पूर्व समयमें तो हमें सिद्ध भगवानका ध्यान ही सहाय है। श्रेणीमें पहुंचे हुए मुनिजन चाहे सिद्ध भगवानका ध्यान करें, चाहे परमाणुका ध्यान करें, उनका ध्यान वीतराग है, निर्दोष है, वे कुछ भी विचार करते हों निरीह बनकर शुक्लध्यान उत्पन्न कर लेते हैं।

परमाणुके अवगमका उपकार—परमाणु निज स्वरूप मात्र है, अत्यन्त सूक्ष्म है, अविभागी है, ऐसे परमाणुके स्वरूपकी समझ भी इन्द्रियोंके विषयोंको प्रोत्साहन नहीं देती। जैसे स्कंधोंका विचार करके रसकी उत्सुकता, स्पर्शकी उत्सुकता, देखनेकी उत्सुकता, ऐसे इन्द्रिय विषयोंकी उत्सुकता बनती हैं क्या परमाणुका ध्यान करके, परमाणुकी चर्चामें परमाणुके मननमें किसी इन्द्रियविषयको भी प्रोत्साहन मिला है, यह परमाणु अविभागी है। जैसे परमात्मद्रव्यनिश्चयसे लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी होनेपर भी अखण्ड द्रव्यकी दृष्टिसे उनमें क्या विभाग होगा, सभी आत्मावोंमें वे केवल केवल सभी परमात्मद्रव्य अविभागी हैं, उनका विभाग नहीं होता, टुकड़ा नहीं होता, आधा आत्मा कहीं हो, आधा कहीं हो, ऐसा टुकड़ा नहीं बनता। तो जैसे परमात्मद्रव्य अविभागी है, ऐसे ही परमाणु द्रव्य भी निरंश होनेसे अविभागी है।

परमाणुका मौलिक रूप—यह परमाणु मूर्तिमान है। यह आत्मद्रव्य मूर्तिमय नहीं है। अमूर्त परमात्मद्रव्यसे विलक्षण स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाली जो मूर्ति है, उस मूर्तिके द्वारा यह परमाणु निष्पन्न है, यह मूर्तरूप है, इस कारण यह परमाणु मूर्तिमय है। यह सारा लोक, ये सारे दृश्यमान स्कंध जिस मूलतत्त्वसे बने हैं उसपर दृष्टि दो तो यह स्कंधमयता सब इस दृष्टिसे विघट जाती है। इतनी बड़ी यह भींत खड़ी है। इस भींतका निर्माण किस मूलसे हुआ है? वह परमाणु। तो इन स्कंधोंमें जो परमाणु हैं, एक एक हैं, ऐसे परमाणुवोंपर दृष्टि डालो तो ये सब दृष्टिमें बिखर जायेंगे और सारहीनसे प्रतीत होंगे। हम कुछ भी जाने, उसके मूल तत्त्वपर दृष्टि बनायें तो ये रागद्वेष टिक नहीं सकते। घरके परिजन जो भ्रमके कारण सब कुछ बन बैठे हैं, जिनके पीछे अपना सर्वस्व न्यौछावर किया जा रहा है।

मायाके अन्तः परमार्थका दर्शन—भैया! ये सब दृश्यमान क्या हैं? उनका मूल तत्त्व निरखिये। वे हैं तीनके पिण्ड। ज्ञानादिक गुणोंके पिण्ड और कार्माणवर्गणाके पिण्ड और औदारिक वर्गणाके पिण्ड—इन तीनोंका पिण्डोला संसारी है, ये दोनों तो पौद्गलिक हैं कार्माण और औदारिकवर्गणा। एक जीव चेतन है। चेतनमें मूल तो है चैतन्यस्वभाव, किन्तु जो इसमें रागद्वेष विषयकषायोंका विस्तार बना है यह मायारूप है। पुद्गलस्कंधोंकी तरह सा मिला-जुला यह ऐसा रूप है। इसमें मूल तो एक चैतन्य स्वभाव है जिसका फिर यह इतना विकार और विस्तार बना है। ऐसे ही इन वर्गणावोंमें मूलभूत परमाणु है जिसका संचय होकर इतना विस्तार और विकार बन गया है तो जो बाह्यतत्त्व है, कारणभूत है। उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर दृष्टि जानेपर रागद्वेषकी वृद्धि नहीं होती। यों निरखनेपर निर्णय हो जायगा कि अब उस कुटुम्बमें क्या मिल गया? इस ज्ञाताकी निधिमें क्या आ रहा? सब माया है, सब बिखर गया। केवल एक चैतन्य और परमाणु--ये दो तत्त्व ही नजर आने लगे। इतना लम्बा चौड़ा यह दो डेढ़ मनके वजनका यह सब कुछ ओझल हो गया, बिखर गया। अब इस ज्ञानी की दृष्टिमें केवल चैतन्य और परमाणु ही रह गया।

ज्ञानकी ज्ञानक्रियाशीलता--यह ज्ञान जाने बिना तो रहता नहीं, इसे कहाँ रख दोगे, कहाँ ले जावोगे, कहाँ फेंकोगे, कहाँ छिपावोगे? जैसे उज्ज्वल रत्नकी आभा कहाँ छिपेगी, वह अन्दर चमकती ही रहेगी, कितने ही कपड़ोंका आवरण उसपर डाल दो, ऐसे ही यह ज्ञान कहाँ छुपेगा? यह अंतः जानन बना ही रहेगा। तो यह ज्ञान जाने बिना रह नहीं सकता। जाननेमें तो सब आता ही है। हाँ कभी एक आत्मध्यानका पुरुषार्थ करें तो बाह्यतत्त्वों का विकल्प न रहकर वहाँ केवल निजस्वरूप रहता है जाननमें, पर चलो निज ही सही, जाननमें तो कुछ रहा। जाननमें कुछ नहीं रहे, ऐसी स्थिति ज्ञानकी कभी नहीं हो सकती, और फिर यह आत्मस्वरूपका जानन सदा नहीं रहता और सदा रहता है तो इसके साथ-साथ अन्य पदार्थोंका भी जानन रहता है, और वह वीतराग स्थितिमें। हम आपके कभी-कभी आत्मज्ञान भी होता है, और अब तो प्रायः परपदार्थोंका ज्ञान करते रहते हैं। यह ज्ञान जानन बिना रह नहीं सकता तब इस ज्ञानका मुंह बंद क्यों करते, इसका श्वास रोकते, क्यों इसका गला घोटते? जानने दो इस ज्ञानको, जो कुछ जानता है, जानने दो, फैलने दो, तुम तो एक परिस्थिति बदल दो। जिसको भी यह ज्ञान जानता है उसके मूल स्वरूपको जानने लगो। इसमें जो मूल है, सहज तत्त्व है उसको जाननेमें लग जायें तो उस ज्ञानसे हमें अनर्थ न मिलेगा, कुछ अर्थ ही होगा।

पुद्गलके भेदविज्ञानका इन्द्रियोपभोग्यसे विरक्ति करानेका प्रयोजन--ये लौकिक जन स्कंधोंमें इतने आसक्त हो रहे हैं कि सदा अपने स्वार्थसाधनाकी बात सोचा करते हैं। ऐसे लौकिक जन इस मिथ्यारोगका, मोहरोगका निवारण कैसे कर सकेंगे? उन्हें जिससे विरक्त करना है उसका सही स्वरूप बताना आवश्यक है। केवल जीव जीवकी चर्चासे ही ग्रन्थ भरे हुए हों, अजीवतत्त्वकी बात उनमें नहीं आ पायी हो तो उसमें कर्तव्यकी निश्चयता परिपूर्णरूप में नहीं आ पाती। और फिर उन अचेतन तत्त्वोंकी भी जो उनका शुद्ध विकास है उस शुद्ध विकासकी चर्चा होती है तो उसमें रागद्वेष क्या? अभी किसी स्कंधकी चर्चा की जाने लगे, सिनेमा, होटल, वाहन, देश-विदेश आदिकी चर्चा चलने लगे तो प्रकृत्या वहाँ रागद्वेष चलने लगेंगे। उनमें यह छंटनी होने लगेगी कि यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, पर जहाँ एक इस शुद्ध परमाणुकी चर्चा चल रही है उसमें कहीं रागद्वेष उत्पन्न होते रहते हैं क्या? कौनसा परमाणु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आपको रुच रहा और कौनसा परमाणु आपको बुरा लग रहा ? अरे रुचने और न रुचनेका व्यवहार इन परमाणुवोंमें नहीं चल रहा है। वह तो ज्ञानका विषयभूत है। तो उस शुद्ध परमाणुकी चर्चामें भी राग विरोधका अवसर नहीं होता। उस ही परमाणुकी बात इस गाथा में कही जा रही है।

परमाणुकी अविभागिता—समस्त उक्त स्कंधपर्यायोंके भेद भेदसे जो अन्तमें उत्पन्न होने वाला भाव है वह परमाणु है। जैसे कि इस मनुष्यपर्यायमें भेद कर-करके कि यह शरीर मैं नहीं हूं, कर्म मैं नहीं हूं, रागादिक मैं नहीं हूं, विकल्प तरंग मैं नहीं हूं, ज्ञान द्वारा भेद कर-करके और इस ज्ञान भेदभावनाके बलसे इसको प्रकट भी भेद हो जाय, जुदा हो जाय तो ऐसे भेदके फलमें जो अन्तिम विभाग होगा वह शुद्ध परमात्मद्रव्य है। वह अन्तिम विभाग क्या ? केवल जैसा यह ज्ञानादिक गुणोंका पुञ्ज केवल निज रूप है वही मात्र रह जाय, ऐसे ही इन स्कंधोंमें अन्तिम विभाग परमाणु कहलाता है, इसका फिर और विभाग नहीं होता। यह अविभागी है और विभागरहित एकप्रदेशी होनेसे यह एक कहलाता है।

परमाणुकी अविनाशिता—जैसे चेतन चेतनरूपसे कभी नष्ट होगा क्या ? नहीं। यह चेतन निगोद जैसी निकृष्ट दशामें भी रह आया, पर इसकी चेतनता कभी नष्ट नहीं हुई। ऐसे ही यह पुद्गल परमाणु अमूर्त तत्त्व है और व्यक्त मूर्तिताको भी प्राप्त हो गया, स्कंधोंके रूपमें आ गया, फिर भी क्या पदार्थत्वके रूपसे इसका क्या विनाश हुआ है ? जो स्वरूप है, जो ढंग पद्धति है वह वही ही रही, उसका विनाश नहीं हुआ, अतएव वह नित्य है। मूर्ति नाम कहलाता है रूप, रस, गंध, स्पर्शवान होनेका। यह परमाणु यद्यपि प्रकट रूपमें न किसी रूपरूप है, न किसी रसरूप है, न गंधरूप है, न स्पर्शरूप है तब भी इसकी शक्ति है और इसकी पर्याय भी कोई न कोई अन्तः अव्यक्त व्यक्त रहती ही है, ऐसी मूर्तिताको यह परमाणु कभी नहीं छोड़ता, अकेला रह गया, कार्यपरमाणु बन गया, फिर भी मूर्तिता कहीं नहीं जाती।

परमाणुकी अशब्दता—शब्द परमाणुका गुण नहीं है, रूप आदि तो गुण है। गुण उसे कहते हैं कि जो शाश्वत रहे और जिसका कोई न कोई परिणमन प्रतिसमय रहा करे। शब्दमें यह बात नहीं है। परमाणुमें शब्द शाश्वत रहे और फिर उस शब्दकी कोई न कोई पर्याय सदैव व्यक्त रहे, ये दोनों ही बातें नहीं हैं। न तो शब्द शाश्वत रहते हैं, जब व्यक्त हो तब हो और शब्द गुण माना जाय तो उस शब्दगुणकी परिणति भी सदैव नहीं रह सकती। शब्द गुण ही नहीं है। परमाणुमें शब्दगुणका अभाव होनेसे शब्दरूप गुणपरिणमन भी परमाणुमें असंभव है। शब्द तो स्कंधरूप द्रव्यपर्याय है। परमाणु शब्दरहित है। स्कंधोंके संयोग और वियोगका निमित्त पाकर भाषावर्गणा जातिके जो पुद्गल स्कंध हैं वे शब्दरूप परिणाम जाते हैं। उनका यह शब्दरूप परिणमन प्रदेशपरिणमन है, गुणपरिणमन नहीं है। भाषावर्गणा

http://sahjanandvarnishastra.org/

का भी कोई अणु एक अणुके रूपमें रह जाय तो भी वह शब्दरूप नहीं परिणम सकता। प्रत्येक परमाणु शब्दरहित है।

परमाणुमें शब्दकारणताका भी अभाव—शब्दरहितपनेका निषेध इस गाथामें इसलिए किया गया कि स्थूलरूपसे कुछ लोग इन शब्दोंके बारेमें सोच सकते हैं कि ये दिखते तो हैं नहीं, कोई पिण्डरूप तो हैं नहीं, तो शायद ये शब्द ही परमाणुके रूप होंगे, उनकी सूक्ष्मताके कारण और अदृश्यताके कारण ऐसी दृष्टि किसी स्थूल बुद्धिमें हो सकती है। अतः प्रथम ही निषेध किया गया है कि परमाणु शब्दरहित है, और शब्दरहित क्या, शब्दका कारण भी नहीं है। परमाणुसे शब्दकी उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार इन स्कंधोंमें जो शुद्ध मूल तत्त्व है वह मूलतत्त्व ऐसा निर्दोष है यही है वास्तविक पुद्गल द्रव्य परमाणु। अब इस ही परमाणुके सम्बंधमें आगे और विशेष वर्णन होगा।

आदेसमत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥७८॥

परमाणुकी मूर्तता, एकप्रदेशिता व स्कन्धकारणता—परमाणु आदेशमात्रसे मूर्तिक है, अर्थात् वह आँखों नहीं दिखता, किन्तु आगम और युक्तियोंसे परमाणुमें मूर्तिकता सिद्ध होती है। यदि परमाणुमें मूर्तिकता न होती तो अनन्त परमाणु मिलकर भी जो स्कन्ध होते हैं उनका मूर्तरूप नहीं बन सकता था। परमाणुमें मूर्त गुण है ऐसा कहनेसे कहीं यह अर्थ न लेना कि परमाणु एक पदार्थ है और उसमें मूर्त गुण रहा करते हैं। मूर्त गुण याने स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये वास्तवमें परमाणुसे पृथक् नहीं हैं। केवल संज्ञा आदिकके निमित्तसे इसमें भेद किया जाता है। यह परमाणु एकप्रदेशी है। एकप्रदेशीका अर्थ यह है कि वही तो परमाणु की आदि है और वही परमाणुका अन्त है और वही परमाणुका मध्य है, याने परमाणु आदि मध्य अन्तसे रहित है, वही एकप्रदेशी कहलाता है। यदि किसीका आदि है और अन्त है चाहे वह निकट ही निकट हो तो वह एकप्रदेशी न होगा। कमसे कम द्विप्रदेशी हो तो आदि और अन्त सिद्ध होगा और तीन प्रदेशी हो सूची रूपमें तो उसमें मध्य सिद्ध होगा, किन्तु यह परमाणु तो एकप्रदेशी है। इसका वही आदि है, वही मध्य है और वही अन्त है। इस ही तरह द्रव्य और गुणमें प्रदेशकी पृथक्ता न होनेसे जो ही परमाणुका प्रदेश है वही रूप, रस, गंध और स्पर्शका प्रदेश है। यह परमाणु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि कायोंका मूलभूत है, कारण है। परमाणु पृथक् हो और पृथ्वी, जल आदिक तत्त्व पृथक् हों ऐसा नहीं है।

भौतिकवादमें मूर्त गुणोंका विच्छिन्न कथन—परमाणुमें ४ गुण हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श। इन चार गुण वाले परमाणुवोंसे जिन पिण्डोंकी निष्पत्ति होती है उनमें भी ये सब चारों गुण हैं। यदि ऐसा माना जाय कि पृथ्वी धातुके कारणभूत परमाणुमें केवल गंध गुण है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी परमाणुमें गंध, रस दो गुण हैं, किसी परमाणुमें गंध, रस, रूप— ३ गुण हैं अथवा एक-एक गुण वाला परमाणु है। पृथ्वी धातुके कारणभूत परमाणुमें केवल गंध है तो उसमें से तीन गुण खोज लेनेपर, अलग हटा देनेपर उन गुणोंका अविभागी प्रदेश वाला परमाणु ही नष्ट हो जायगा अथवा कितना विलक्षण प्रतिपादन है कुछ दार्शनिकोंका जो केवल पृथ्वीमें गंध गुण ही माना, जलमें रस गुण ही माना, अग्निमें रूप गुण ही माना, वायुमें स्पर्श गुण ही माना, उनका कारणभूत परमाणु जब चार गुण वाला है तो उनका मूर्तरूप बननेपर पृथ्वी बनी तो तीन गुण खतम हो गए। यदि वे तीन गुण समाप्त हो गये तो उन गुणोंका आधार परमाणु ही खतम हो गया, फिर तो यह जगत ही सूना हो जाना चाहिए। इस कारण शेष गुणोंका अपकर्ष बताना युक्त नहीं है।

धातुचतुष्कका कारणभूत द्रव्य—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार धातुवोंका कारण यह एक ही प्रकारका परमाणु है। परिणमन की विचित्रतासे किसी पिण्डमें गंधगुण व्यक्त है, किसीमें रस गुण व्यक्त है, किसीमें स्पर्शगुण व्यक्त है, और किसीमें रूपगुण व्यक्त है। यह परमाणुओंके संघातसे उत्पन्न हुए स्कंधोंमें परिणमनकी विचित्रता है। उन गुणोंमें व्यक्त और अव्यक्तपनेका तो अन्तर है, पर ऐसा नहीं है कि कोई परमाणु या कोई धातु, कोई गंध-गुण वाली हो, कोई रसगुण वाली हो, ऐसी एक-एक गुण वाली कोई धातु नहीं है। ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु जिन्हें चारुवाक लोग अजीव कहते हैं, अचेतन कहते हैं।

दृश्यमान सकल स्कंधोंकी जीवकायरूपता—चार्वाक दर्शनमें पृथिवी आदि अचेतन ही तत्त्व हैं, चेतनका तो अभाव ही है। वे अचेतन क्या हैं? वे एकेन्द्रिय जीवके शरीर हैं। वे भी मात्र अचेतन नहीं हैं, और जितने भी जो कुछ दृश्यमान हैं वे सब जीवके शरीर हैं। दरी, कम्बल, चौकी, ईंट, पत्थर जो कुछ भी नजर आ रहा हो धूल, पानी, मिट्टी ये सब जीवके शरीर हैं। कोई सजीव शरीर है और कोई जीवरहित हो गए ऐसा शरीर है। कोई चीज उठाकर आप ऐसा बता सकते हैं क्या कि जो जीवका शरीर न हो, ऐसी कोई भी बात आप न बता सकेंगे। चौकी है, यह बनस्पतिकायिक जीवका शरीर है। यह दरी है, यह वनस्पति-कायिक जीवका शरीर है। ये पत्थर, पृथ्वीकायिक जीवके शरीर हैं। ये रंगरोगन ये पृथ्वी-कायिक जीवके शरीर हैं। कौनसा दृश्यमान पदार्थ ऐसा है जो जीवका काय न हो? इसी प्रकार कुछ लोगोंने सबको एक ब्रह्मरूप माना है। जीवका सम्बंध हुए बिना इन दृश्यमानोंका यह आकार ही नहीं बन सकता था। देखो इन दृश्यमान कायोंके कारण जीवका आकार बना है और जीवके सम्बंधके कारण इनका आकार बना है। किसी अंकुरमें जीव न होता, वह वृक्षका रूप न बनता तो ये चौकी आदिक आकार कहाँसे बनते? अब यह दूसरी बात है कि जीवरहित हो जानेपर इन कायोंकी कुछ भी शकल बने, पर इसमें जो मूल आकार बना है वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
जीवके सम्बंध बिना नहीं बन सकता था। तो यह सब कुछ जो दृष्टि है वह जीवसम्बंधित है।

पुद्गलवर्गणायें—समस्त पुद्गल वर्गणायें २३ प्रकारकी होती हैं। उन २३ प्रकारकी वर्गणावोंमें से जीवके द्वारा ग्रहणमें आने वाली वर्गणायें ५ प्रकारकी हैं—आहारवर्गणा, भाषा-वर्गणा, मनोवर्गणा, तैजसवर्गणा और कार्माणवर्गणा। बाकी उन २३ भेदोंमें एक तो अणु-वर्गणा है और शेष बची १७ अन्य वर्गणायें हैं। वह सब मूलस्वरूप एक ही प्रकारके परमा-णुवोंका पुञ्ज है। जैसे पृथ्वी—पृथ्वी एक होनेपर भी धूल, संगरमरका पाषाण, अन्य पाषाण, हीरा, जवाहरात, सोना, चांदी ये भिन्न-भिन्न रूपमें हैं और इनमें यह भी देखा जाता है कि यह सोना संगमरमर रूप नहीं बन सकता और धूल हीरा रूप नहीं बन सकती, लेकिन क्या यह नियम सदाकालके लिए रहेगा कि सोना कभी पत्थर रूप नहीं बन सकता और पत्थर कभी सोना रूप नहीं बन सकता? लेकिन प्रायः चिरकाल तक उनमें ऐसा है, इस कारण वे पृथक्-पृथक् देखे जा रहे हैं। ऐसे ही ये वर्गणायें अति चिरकाल तक इस ही प्रकार रहती हैं, अतएव ये इतने प्रकारोंमें पायी जाती हैं। मनकी रचना आहारवर्गणावोंसे नहीं हो सकती, मनकी रचना मनोवर्गणावोंसे ही होगी, शरीरकी रचना कार्माणवर्गणावोंसे न होगी, वह आहार-वर्गणावोंसे होगी। जैसे आहारसे आहार पर्याप्ति होती है, आहारक बनता है तो ५ प्रकारकी वर्गणावोंसे ५ प्रकारके कार्य होते हैं, फिर भी मूलमें सभी वर्गणावोंका कारणभूत परमाणु एक रूप है। उस एक रूप परमाणुसे यह सारा ठाट बना हुआ है।

ठाठकी अहितरूपता—यह समस्त ठाठ असार है और इस जीवमें दुर्भाव विषय कषाय इन सबकी उत्पत्ति करनेका कारणभूत है। एक एक कथानक है कि दो भाई धनोपा-र्जनके लिए परदेश गये। वहाँ खूब धनोपार्जन किया। जब घर आनेको हुए तो अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर दो मणि खरीद लिए। मानो वे दोनों मणि दो लाखके थे। उनको लेकर दोनों भाई चले। बड़े भाईके हाथमें दोनों मणि थे। समुद्रमें से रास्ता था सो जहाजमें बैठकर चले। समुद्रके बीच बड़ा भाई सोचता है कि रत्न तो हमारे पास हैं। हमारे ही परि-श्रमसे ये आये हैं, घर जाकर बंट जायेंगे, सो ऐसा करें कि इस छोटे भाईको इसी समुद्रमें धकेल दें, फिर तो हमें दोनों मणि मिल जायेंगे। फिर थोड़ी देर बाद सद्बुद्धि जगी—अहो मैंने कितना खोटा विचार बनाया? इस जड़ वैभवके पीछे मैंने अपने भाईका घात करनेका विचार किया। छोटे भाईसे बोला कि ये रत्न तुम अपने पास रक्खो, हम तो अपने पास न रक्खेंगे। छोटे भाईको वे रत्न दे दिये। कुछ देर बाद उसके मनमें आया कि ये रत्न हमारी ही बुद्धिसे कमाये गये हैं, बड़े भाईने तो सिर्फ शारीरिक श्रम किया था। ये घर जाकर बंट जायेंगे। सो ऐसा करें कि इस बड़े भाईको इसी समुद्रमें ढकेल दें, सो ये रत्न हमें मिल जायेंगे। कुछ देर बाद वह भी संभाला, सोचा अहो इस जड़ सम्पदाके पीछे मैंने कितना खोटा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचार बनाया ? सो भाईसे कहा—हम ये रत्न अपने पास नहीं रखना चाहते, आप ही अपने पास रक्खो। बड़े भाईने कहा नहीं तुम्हीं रक्खो अपने पास। दोनोंमें सलाह हुई कि इन्हें किसी तरह घर तक ले चलो फिर मां के पास रख देंगे। जब घर पहुंचे तो माँ को वे रत्न दे दिये। कुछ दिन बाद माँ सोचती है कि ये रत्न तो लाखों रुपयेके हैं। ये तो लड़के छीन लेंगे सो ऐसा करें कि कुछ खिलाकर किसी तरहसे इन लड़कोंको मार डालें तो ये रत्न हमें मिल जायेंगे। वह भी संभली, सोचा ओह ! जिन लड़कोंसे हमें बड़ा प्यार है उन्हीं लड़कोंको इस जड़ सम्पदाके कारण मार डालनेका विचार बनाया। सो लड़कोंसे कहा कि हम ये रत्न अपने पास न रक्खेंगे। माँ ने उन रत्नोंको फेंक दिया। किसीने न उठाया तो लड़कोंने कहा कि ये रत्न बहिनके पास रख दो। बहिनने अपने पासके रत्न रख लिए। कुछ दिन बाद बहिन सोचती है कि ये रत्न तो कुछ दिन बादमें हमसे ले लिए जायेंगे। ये तो लाखों रुपयेके हैं, सो उस बहिनके मनमें उन तीनोंको साफ करनेका मनमें विचार आया। फिर वह कुछ सम्हली। सोचा ओह ! इन रत्नोंके पीछे मैंने अपनी माँ तथा भाइयोंको मार डालनेका विचार बनाया, यह कितना खोटा विचार है, सो उस बहिनने भी उन रत्नोंको अपने पास रखना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें यह तय हुआ कि इन्हें समुद्रमें फेंक दिया जाय। ऐसा ही किया गया तब शान्ति मिली। तो समझ लो अब इस जड़ सम्पदाके कारण कितनी ही हानियाँ उठानी पड़ती हैं ?

परिग्रहप्रीतिकी क्लेशरूपता—भैया ! जिसे कहते हैं धीरे-धीरे घाव करना और उस पर नमक छिड़ना, ऐसा ही क्लेश परिग्रहकी प्रीतिमें होता है, बल्कि इससे भी अधिक पीड़ा जड़ वैभवके प्यारमें होती है। इसके मूलमें देखो है क्या ? बिल्कुल व्यर्थ चीज है, जिससे हमारा कोई व्यवहार ही नहीं है। और जो भी व्यवहार किया जा रहा है उसके प्रयोजनका विश्लेषण किया जाय तो प्रयोजन क्या निकलेगा ? न कुछ। सारी जिन्दगी नाना विकल्पोंमें गंवा दी। परिजन वैभव सबमें समता बनायी, आखिर हुआ क्या अन्तमें ? सब कुछ छोड़कर चले गए। यह जीव न जाने मरकर कहाँसे कहाँ पैदा हो जाय ? यहाँसे मरकर वनस्पतिकायिक जीव बन गया तो फिर यहाँके समागम क्या काम आयेंगे ? मरकर पेड़-पौधे बन गए तो खड़े हुए हैं जंगलमें। इस जड़विभूतिमें कुछ सार मत समझो, अपना एक निर्णय शुद्ध बनावो, बुद्धिमें दोषोंको न आने दो। अपनी बुद्धिको निर्मल रक्खो, इस आत्मप्रभुका घात न हो सके ऐसा उद्यम करो। ये सब ठाट तो मिट जायेंगे, पर यह आत्मा तो रहेगा। इस आत्मापर क्या गुजरेगी ? यहाँके ठाट यहाँके समागम मदद देने न पहुंचेंगे। अपने किए हुए कार्योंका फल इस जीवको अकेले ही भोगना पड़ता है।

उपदेशमें पुद्गलप्रीतिपरिहारका प्रयोजन—यह पुद्गल द्रव्योंका प्रकरण परमाणु

Version 1

पुद्‌गल द्रव्योंकी असारता समझनेके लिए पढ़िये, बांचिये, समझिये। इन पौद्गलिक ठाठोंसे हटें और अपने शुद्ध सहज ज्ञानानन्दस्वरूप इस प्रभुकी भक्तिमें लगेंगे। इसमें तो कुछ हाथ लगेगा और इन ठाठ-बाटोंमें लगनेसे जैसे कहा करते हैं, कोयलेकी दलालीमें काले हाथ, लेकिन वहाँ भी कुछ मिलता है, पर यहाँ तो कुछ भी इस जीवको नहीं मिलता है। केवल कल्पनाएँ बनाता है। एक बार भी समस्त परसे न्यारे ज्ञानस्वरूप इस निज आत्माका अनुभव बन जायगा तो यह जीव सदाके लिए संकटोंसे छूटनेका मार्ग पा लेगा।

अकिञ्चन आत्मतत्त्वकी अनुभूतिका अनुरोध—भैया! आपके पास २४ घंटेमें दो मिनट भी ऐसे फाल्तू नहीं हैं क्या कि परपरिग्रहोंकी कल्पनामें अपना मन न लगाये रहें। विषय और कषायोंमें ही अपना चित्त न लगाये रहें और निज अन्तस्तत्त्वकी उपासनामें लगें। अरे २४ घंटेमें कुछ समय तो अपने आत्मानुभवमें लगावो, उससे ही हित होगा। यहाँके बाह्य प्रसंगोंमें लगकर तो किसी ने भी हित नहीं पाया। न वे बड़े बलवान पाण्डव रहे, न रावण रहा, जो अच्छी करनी कर गए वे भी नहीं रहे और जो बुरी करनी कर गए वे भी नहीं रहे। हाँ अन्तर इतना है कि जो अच्छी करनी कर गए वे अब भी जहाँ हैं तहाँ सुखी हैं, आनन्दित हैं और जो बुरी करनी कर गए वे अब भी जहाँ होंगे दुखी होंगे, क्लिष्ट होंगे। हे आत्मप्रभु! तुझमें कहीं कुछ कमी है क्या, अधूरापन है क्या? अरे तू तो स्वयं अपने आपमें परम आनन्दको लिए हुए है। तू अपनी दृष्टिको एकदम खोकर बाहरमें इन झूठे असार स्कंधोंमें इतनी तेजीसे लग रहा है। जो हाड़ मांस, मज्जा, लोहू इत्यादिसे भरा हुआ यह शरीर है इसमें रति कर रहा है। अरे इन बाह्य प्रसंगोंमें लगकर तो तू अपना घात किये जा रहा है।

देहविरक्तिकी आवश्यकता—भैया! ध्यान देकर देखो तो सही कि इस पिण्डमें है क्या? इसमें जो एक आधारभूत जीवतत्त्व है वहाँ तक भीतर निरखकर देखो तो सही, यह ऊपर तो चिकना चाम है, ठीक है, यह चिकना चाम भी इस पसीनेके कारण है। कोई सारभूत बात नहीं है। इस चामके अन्दर माँस, मज्जा, लोहू, हड्डी आदि सभी अपवित्र चीजें हैं। यह जीव इन माँस मज्जावोंमें एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धनसे बंधा हुआ ठहर रहा है। कितने कष्टमें है हम आपका परमात्मतत्त्व? जो एक विशुद्ध पावन ज्ञानमूर्ति है, ज्ञान और आनन्द ही जिसका स्वरूप है, ऐसा यह शुद्ध आत्मतत्त्व इन हड्डियोंमें फंसा हुआ है, उसकी सुधलो। उसकी सुध तब तक नहीं पायी जा सकती जब तक चेतन अचेतन परिग्रहोंको तू अपनेसे न्यारा न समझ लेगा। इन चेतन अचेतन परिग्रहोंके लगावको तू अपना विध्वंसक जब तक न समझ लेगा तब तक तू इन असार स्कंधोंसे हटकर अपनी ओर न आ सकेगा।

मायाजालकी निःसारता—ये समस्त दृश्यमान स्कंध सब मायाजाल हैं। इनका विश्लेषण करें तो अन्तमें मूल तत्त्व कुछ न निकलेगा और निकलेगा तो वह परमाणु, जिससे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न व्यवहार चलता है, न जिसका ग्रहण होता है। जैसे कोई किसी आशासे सारा पहाड़ खोद डाले और सारा पहाड़ खोद चुकनेपर अन्तमें उसमें से निकले एक चूहा और कुछ न निकले तो वह सारा श्रम व्यर्थ ही तो रहा। ऐसे ही इन दृश्यमान स्कंधोंका कुछ विश्लेषण करें तो इसमें सार चीज क्या निकली ? वही परमाणु, जिससे किसीका रामजुहार भी नहीं होता। तो यहाँ न इन दृश्यमान स्कंधोंमें कुछ सार है और न चेतनाके पथमें हमारे व्यवहारके लिए अन्य जगह कुछ सार है। इन परमाणुवोंकी विचित्रता देखो—कोई व्यक्त है, कोई अव्यक्त है।

मायासे निवृत्ति और कल्याणमें वृत्ति—कोई शंका करे या प्रस्ताव रक्खे कि ऐसा अव्यक्त शब्द गुण भी मान ले, सो ऐसा नहीं है, परमाणुमें शब्द अव्यक्त रूपसे भी नहीं है, क्योंकि शब्द एक प्रदेशसे उत्पन्न नहीं होता है, वह अनन्तप्रदेश अनन्त परमाणु वाले स्कंधोंसे उत्पन्न हुआ करता है। परमाणु एकप्रदेशी है, शब्द अनेकप्रदेशात्मक हैं। एक प्रदेशका अनेक प्रदेशात्मकताके साथ एकता नहीं हो सकती। यों मूर्त गुण वाले परमाणुवोंके कारण यह सारा मायामय जाल रचा खड़ा हुआ है। इनसे निवृत्त होनेमें और अपने सहज चैतन्यस्वरूपमें उपयुक्त होनेमें ही अपना कल्याण है।

सद्दो खंधप्पभणो खंधो परमाणुसंगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥७६॥

शब्दोंकी स्कन्धपर्यायरूपताका वर्णन—पुद्गल द्रव्यके इस प्रकरणमें पुद्गलके परमाणु और स्कंध ये प्रकार बताकर और स्कंधोंके पिण्डरूप अथवा प्रदेशाकार रूप भेद बताकर, अब शब्दको ये पुद्गल स्कंधकी पर्याय हैं इस प्रकार प्रसिद्ध कर रहे हैं। पुद्गलद्रव्यमें रूप, रस, गंध आदि ये चार तो गुण हुआ करते हैं। जिन गुणोंका कुछ न कुछ परिणमन सदैव रहा करता है। उन गुणोंकी भाँति पुद्गलमें शब्द नामका गुण नहीं है, किन्तु शब्द एक स्कंध पर्याय है। शब्द रूपसे इन स्कंधोंकी परिणति हुआ करती है। शब्दोंकी उत्पत्ति स्कंधसे है। जब उन स्कंधोंमें परस्पर संघट्टन होता है वह रगड़नेकी तरहसे संघट्टन हुआ या रगड़नेकी तरह से वियोग हुआ तो स्कंधोंके उन संयोग और वियोगके कारण इन शब्दोंकी उत्पत्ति होती है।

ध्वनिकी इन्द्रियग्राह्यता—ध्वनिका नाम शब्द है। ये शब्द भावेन्द्रियके द्वारा ज्ञानमें आते हैं, और कर्ण नामकी बाह्यइन्द्रियका आलम्बन पाकर ज्ञानमें आते हैं। ५वीं इन्द्रिय है कर्णइन्द्रिय। इसका दूसरा नाम है श्रोत्रइन्द्रिय। श्रोत्रका अर्थ है जिससे सुना जाय। श्रूयते अनेन इति श्रोत्रं। और कर्णका भी यही अर्थ है जिससे सुना जाय। कर्ण्यते अनेन इति कर्णं। तो एक टेढ़े-मेढ़े यंत्रकी तरह इन कानोंके भीतर जो एक पिंड है, जहाँ एक अत्यंत कोमल पर्दा है, जिससे शब्द स्पष्ट होते हैं, जो पर्दा इतना कोमल है कि वह कुछ सुननेके सम्बंधमें मामूली ढंगसे हिलता भी रहता है। जिसकी नकल टेपरिकार्डरमें की गई है। जब उसमें ध्वनि भरते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
हैं तो जो हरे रंगका थोड़ा प्रकाश रहता है वह प्रकाश हिलता रहता है तब उस टेपमें ध्वनि आती है । ऐसे ही इन कानोंके पर्देमें साधारणतया परिस्पंद होता रहता है । तो यह बाह्य श्रवणइन्द्रिय तो आलम्बन हुई और कर्णनामक भावेन्द्रियके द्वारा ज्ञान हुआ ।

इन्द्रियके भेदोंमें भावेन्द्रियका वर्णन—इन्द्रियां दो प्रकारकी होती हैं—एक भावेन्द्रिय और एक द्रव्येन्द्रिय । मरनेके बाद दूसरे जन्मस्थानपर यह जीव जाता है तो रास्तेमें विग्रहगति में इस जीवके भावेन्द्रिय तो है, पर द्रव्येन्द्रिय नहीं है । और सयोगकेवली अवस्थामें भगवान के द्रव्येन्द्रिय तो है, किन्तु भावेन्द्रिय नहीं है । भावेन्द्रिय नाम है लब्धि और उपयोगका । जैसे इस प्रकरणमें कर्ण भावेन्द्रियकी बात चल रही है तो कर्णइन्द्रियावरणका क्षयोपशम हो इसका नाम लब्धि है अर्थात् कर्णेन्द्रियके निमित्तसे जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको ढांकने वाला जो मतिज्ञानावरण है उसका क्षयोपशम होनेपर यह कर्णभावेन्द्रिय प्रकट होती है । भावेन्द्रिय लब्धिरूप और उपयोगरूप हुआ करती हैं । लब्धिका तो तात्पर्य यह है कि कर्णइन्द्रियसे जो हम ज्ञान कर सकते हैं उस ज्ञानको ढांकने वाले कर्मका क्षयोपशम होना और उपयोगका अर्थ है उस शब्दज्ञानके सम्बंधमें हमारा उपयोग लगा होना । जैसे कर्णेन्द्रियके द्वारा जाननेकी योग्यता सदा रहती है, परन्तु उपयोग हो देखनेमें, उपयोग हो अन्य बातमें तो शब्द सुननेमें तो न आयेंगे । तो उपयोग भी हुआ लब्धि, और उपयोगका नाम है भावेन्द्रिय ।

द्रव्येन्द्रियका वर्णन—द्रव्येन्द्रिय नाम है शरीरकी रचनाविशेषका, जिसमें आत्मप्रदेशों की रचना भी गर्भित है । द्रव्येन्द्रियमें दो बातें होती हैं—निर्वृत्ति और उपकरण । जहाँ ज्ञान का सिलसिला चलता है वह तो है निर्वृत्ति, उसमें भी दो बातें हैं—आत्मप्रदेशोंकी तदाकार रचना और पुद्गलकी तदाकार रचना । उपकरणमें उस निर्वृत्तिकी रक्षा करनेके लिए, उपकार करनेके लिए जो उसके आस-पास अगल-बगल चीज होती है वह उपकरण है । जैसे कान कितने हैं ? किसीने असली कान देखा है क्या, जहाँसे शब्द सुनाई देते हैं । जो खास कर्णइन्द्रिय है वह कर्णइन्द्रिय नहीं देखा होगा । जो ये कान दिखते हैं ये कर्णइन्द्रिय नहीं हैं । ये उस कर्णइन्द्रियके उपकार करने वाले उपकरण हैं । तो इस द्रव्येन्द्रियका निमित्त पाकर भावेन्द्रिय के द्वारा शब्दका ज्ञान होता है । भावेन्द्रिय नाम ज्ञानका है और द्रव्येन्द्रिय नाम पुद्गल रचना का है । जो ध्वनि ज्ञात होती है उसका नाम शब्द है ।

शब्दकी मायारूपता—इस प्रकरणसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि आखिर जिस शब्दपर लोग इतना लट्टू होते हैं, खाना भी छोड़ दें, भूखे भी रहें, पर संगीत राग ध्वनि सुननेको मिलना चाहिए । सिनेमाघर कितने भरे हुए मिलते हैं ? चाहे रिक्शा चलाने वाले, मजदूरी करने वाले भरपेट भी न खायें, लेकिन सिनेमाके संगीत सुननेको मिलना चाहिए । आखिर वह जगत क्या है, ये शब्द क्या हैं ? इनकी असलियत मालूम हो और इनका मूल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण कुछ विदित हो, यह मायाजाल है, ऐसी जानकारी होनेपर शब्दोंमें अनुराग हटनेका एक साहस और उत्साह मिलता है।

शब्दविधि—शब्दका यह जिक्र चल रहा है कि शब्द चीज क्या है ? यह शब्द स्वरूप से तो अनन्त परमाणुवोंका एक स्कंध है, कोई जोरसे कानोंमें बोल दे तो ठोकर लगती है और बादमें कानोंको दबाना चाहते हैं, तो शब्द एक स्कंधरूपमें हैं। कभी इन काले पीले रूपोंको देखकर आँखोंमें ठोकर लगी क्या ? नहीं लगती है। गंध सूँघकर कभी नाकमें ठोकर लगी क्या ? नहीं लगी, पर शब्द जरा जोरसे बोले जायें तो कानोंमें आघात होता है ना, इससे ही यह बात सिद्ध होती है कि रूप, रस आदिक तो गुणपर्यायें हैं और शब्द स्कंधपर्याय हैं। जैसे ये डाली, पत्थर इनका आघात हो तो चोट लगती है ना, ऐसे ही शब्दोंकी भी चोट लग जाती है। यह शब्द द्रव्यपर्याय हैं और बहिरंग साधनभूत जो महास्कंध हैं उनके संघट्टनका निमित्त पाकर भाषावर्गणा योग्य स्कंधोंका शब्दरूप परिणमन होता है, और इस तरह ये स्कंधसे उत्पन्न हुए हैं, तालू, ओंठ वगैरा, ये भाषावर्गणाके स्कंध नहीं हैं, ये महास्कंध हैं। भाषावर्गणा के स्कंध जिनसे शब्दपरिणमन होता है वे आँखों नहीं दिखते।

महास्कन्ध व भाषावर्गणास्कन्ध—यहाँ प्रसंगमें ये दो तरहके स्कंध कहे गये हैं। जो मैटर स्कंध शब्दरूप परिणम जाता है उसका नाम तो है भाषावर्गणास्कंध, और जिन चीजोंकी टक्कर लगनेसे तालू, घंटा, झालर, बाजे जिनकी टक्कर लगनेसे ये भाषावर्गणावोंके स्कंध शब्द रूप परिणम जाते हैं, ये स्कंध महास्कंध नामसे कहे गये हैं। इन महास्कन्धोंके संघट्टनसे भाषा वर्गणाके स्कंधोंका भी अन्तः संघट्टन होता है अथवा उस संघट्टनका निमित्त पाकर भाषावर्गणायें शब्दरूप परिणाम जाते हैं जब इन महास्कन्धोंमें परस्पर संघट्टन होता है, स्पर्श होता है, ठोकर लगती है उस समय शब्दसे रचे हुए ये अनंत परमाणुमयी शब्द योग्य वर्गणायें स्वयं परस्परमें एक दूसरेमें प्रवेश करके चारों तरफसे व्यापकर इस सकल लोकमें ये उदित हो रही हैं।

शब्दोत्पत्तिपद्धति—शब्दोंकी उत्पत्तिका इसमें ढंग बताया है। इन महास्कंधोंमें तो जो स्कन्ध हैं वे एक दूसरेमें प्रवेश करने लगते हैं और जब भाषावर्गणाएँ आपसमें प्रवेश करने लगती हैं उस समय शब्दोंकी उत्पत्ति होती है। कितना सीधा तरीका बताया है, जो शब्दमें आविष्कार करने वाले हैं रेडियो आदिकके आविष्कार करनेका जिससे मूल मार्ग मिलता है। इस लोकमें यद्यपि ये शब्द ठसाठस भरे पड़े हैं। यह भाषावर्गणा भरपूर पड़ी हुई है। लेकिन जहाँ-जहाँ बहिरङ्ग कारण सामग्री मिलती हैं वहाँ-वहाँ उन शब्दोंका उदय होता है अर्थात् उस-उस जगह वे भाषावर्गणायें स्वयं शब्दरूपसे परिणम जाती हैं।

शब्दकी उत्पाद्यता व पौद्गलिकता—ये शब्द नियमसे उत्पाद्य हैं, इस कारण इनको स्कंधसे उत्पन्न हुआ कहा है। कोई दार्शनिक लोग इन शब्दोंको आकाशका गुण मानते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और स्थूल बुद्धिमें यह बात थोड़ी देरको समा भी सकती है कि शब्द आखिर कहाँसे आते हैं ? न निकलते दिखते हैं, न इनकी कोई रचना करता है और आकाशमें ही ये शब्द सुनाई देते हैं। तो शब्द आकाशका गुण होना चाहिए। ऐसा कुछ प्रतिभास करनेके लिए अवकाश भी मिलता है स्थूल बुद्धिमें। लेकिन जो परीक्षणके बाद भी सिद्ध होगा, वह आगममें लिखा हुआ है कि शब्द आकाशका भी गुण नहीं है। आकाश अमूर्तिक है। अमूर्तिक आकाशका गुण शब्द होता तो ये अमूर्त शब्द इन इन्द्रियोंके द्वारा जाने न जा सकते थे। ये पाँचों इन्द्रियाँ मूर्तिक पदार्थोंको जाना करती हैं। अमूर्तिक आकाशको जाननेकी सामर्थ्य इन्द्रियोंमें नहीं है, इस कारण ये शब्द आकाशके गुण नहीं हैं।

शब्दभेदविस्तार व भाषात्मक शब्दका वर्णन—अब इन शब्दोंका विस्तार निरखिये। ये शब्द दो प्रकारके होते हैं–एक प्रायोगिक और दूसरे वैश्रसिक। जो प्रयोगसे उत्पन्न हुए हैं, मेलमिलापसे संघट्टनसे क्रिया करने वाले जीवकी क्रियावोंसे जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे प्रायोगिक हैं और जो स्वयं ही उत्पन्न हुए हैं जिनमें क्रियाशील किसी त्रस जीवका प्रयोग नहीं है, जैसे मेघगर्जना आदिक ये वैश्रसिक शब्द हैं। अब इन शब्दोंके प्रकार दूसरी तरहसे यों जानो। शब्द दो तरहके होते हैं–एक भाषात्मक और दूसरे अभाषात्मक। भाषात्मक शब्द दो प्रकारके हैं–एक अक्षरी और एक अनक्षरी। मनुष्य और देव तो संस्कृत प्राकृत इत्यादि अनेक भाषायें बोलते हैं। सारी भाषायें व्यवहारमें काम आती हैं। तो ये सब भाषायें अक्षरात्मक हैं, और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय ऐसे जीव अथवा पशु पक्षी भी जो बोलते हैं वे शब्द अनक्षरात्मक शब्द हैं। इनमें अक्षर नहीं हैं, केवल एक ध्वनिरूप है।

प्रभुकी दिव्यध्वनिका रूप—यहाँ यह भी एक विशेष बात समझनेकी है कि भगवान अरहंतदेवकी जो दिव्यध्वनि खिरती है वह भी अनक्षरात्मक है। उसमें संस्कृत प्राकृत या अन्य-अन्य बोलियोंकी तरह अलग-अलग शब्द नहीं होते हैं। हम आप भाषावोंका आलम्बन लेकर बोलते हैं या किसी भाषा वाक्योंकी पद्धतिसे बोलते हैं तो इसमें राग सिद्ध नहीं हुआ क्या ? रागांश हुए बिना हम इन वचनोंको क्रमसे नहीं बोल सकते। किसी ही प्रकारका राग हो, यदि हम आपकी तरह भगवान भी किसीसे बोलते हों तो उनमें राग सिद्ध हो जाता है। भगवान तो वीतराग हैं, वे यदि हम लोगोंकी तरह क्रमिक शब्द बोलते हैं तो उनमें तो राग सिद्ध हो जायगा। वे किसीके प्रश्न सुनें और उसका समाधान दें, इसमें तो राग है। अतः भगवान कोई भाषा नहीं बोलते हैं।

प्रभुदेहका अतिशय—भगवान वे ही तो हैं जो कभी आदमी थे हम आप सरीखे ही, और संस्कृत प्राकृत बोलते थे, खूब बातें होती थीं। जब उन्होंने मुनिपद धारण न किया था, उससे पहिले जब गृहस्थीमें थे तो क्या कभी अपनी मित्रमंडलीमें उनसे प्रशस्त गप्पें न हुआ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करती थीं, अथवा शासन-व्यवस्थामें न लगते थे क्या या उपदेश वगैरह न किया करते थे क्या ? ये सब कुछ किया करते थे, लेकिन अब परमात्मा होनेपर ये सब खतम हो गये। वे सारीकी सारी बातें बदल गयीं। शरीर भी वैसा नहीं रहा। निर्दोष परमौदारिक स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ उनका शरीर हो गया। इसी कारण तो कोई आगे पीछे कहींसे भी देखे तो उनका मुख दिखता है। उनका शरीर इतना पवित्र स्फटिकमणिकी तरह स्वच्छ हो गया जैसा मुख आगे से दीखता ऐसा ही चारों ओरसे दीखता है।

दिव्यध्वनिकी सर्वभाषारूपता—प्रभुकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक है। इस बातको आप लोगोंने पढ़ा भी होगा। साथ ही यह भी लिखा है दशअष्ट महाभाषा समेत। यद्यपि उनकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक है तथापि १८ महाभाषावोंसे सहित है। कीड़ा-मकोड़ोंकी ध्वनिमें भी अक्षर नहीं हैं। यदि इन १८ महाभाषावों सहित प्रभुकी ध्वनि न हो तब तो उनकी ध्वनि कीड़ा मकोड़ोंकी जैसी ध्वनि मानी जायगी, पर ऐसा नहीं है। वह अनक्षरात्मक है फिर भी १८ महाभाषावों सहित है। जिसमें ७०० छोटी-छोटी भाषायें समायी हुई हैं। यहाँकी लौकिक भाषायें किसी तरह किसी दिन मिल-जुलकर बन गयी हों, ऐसा तो नहीं है।

सर्वभाषामय ध्वनिसे सर्वका लाभ—भगवानके समवशरणमें अमेरिका वाले, अंग्रेजी, चीनी, रूसी, जर्मन इत्यादि सभी जगहके लोग पहुंचे होंगे। भगवान यदि हिन्दी भाषामें बोलते तो और भाषावोंके जानकार तो टापते रह जाते, कुछ भी न समझ पाते। पर ऐसा नहीं है। भगवानकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक है, उसमें कोई भाषा विशेष नहीं है, सर्वभाषामय है। उस दिव्यध्वनिमें ऐसा अतिशय है कि वहाँ बैठे हुए सभी भाषावोंके जानकार अपनी-अपनी भाषामें अर्थ समझ जाते हैं। अब तो यों सुननेमें आता है कि कोई यंत्र ऐसा बना है कि भाषण किसी भी भाषामें हो, मगर तुरन्त ही उसका ट्रांसलेशन अन्य भाषावोंमें होता रहे। भला बतलावो जहाँ इन्द्र वैज्ञानिक मौजूद है वहाँ क्या ऐसे अनुपम यंत्र न होंगे ? यह दिव्यध्वनि निरक्षर शब्दमें है, भाषामें है। शब्द दो प्रकारके बताये जा रहे हैं ना—एक भाषात्मक और एक अभाषात्मक। भाषात्मक शब्द तो ये प्रायोगिक हैं। अब अभाषात्मक शब्दकी बात सुनिये।

अभाषात्मक शब्दका वर्णन—अभाषात्मक शब्द जिनमें भाषा नहीं है वे दो प्रकारके होते हैं—प्रायोगिक और वैश्रसिक। एक बात और ध्यानमें देना है—भगवानकी दिव्यध्वनि तो अनक्षरभाषामय तो है, किन्तु है वैश्रसिक, प्रायोगिक नहीं है। भगवान तालुवोंको, ओठोंको हिलाकर बोलते हों ऐसा नहीं है। उनके सर्व अंगसे एक मधुर प्रिय ध्वनि निकलती है, वह ध्वनि है अभाषात्मक। शब्द दो प्रकारके हैं—एक प्रायोगिक और दूसरे वैश्रसिक। प्रायोगिक अभाषात्मक शब्द तो संगीतके बाजेके हैं। चमड़ेके मढ़े हुए बाजे हों, तारके बाजे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हों, वीणा, बांसुरी आदिके जो शब्द निकलते हैं वे प्रायोगिक नहीं हैं, अभाषात्मक शब्द हैं, और मेघोंकी गर्जना आदिक ये सब वैश्रसिक शब्द हैं। ये सब शब्द महास्कंधोंसे संघट्टन होनेपर भाषावर्गणाके योग्य पुद्गलमें ध्वनि बन जाती है, और उस समयमें भाषावर्गणाके स्कंध परस्पर एक दूसरेमें प्रवेश करते हुए शब्दरूप परिणमा करते हैं, इसीको ध्वनितरंग कहते हैं। भाषावर्गणा स्वयं तरंगित हो जाती है और यह ध्वनि इस तरंग रूपसे चलती है।

शब्दविस्तारकी पद्धति—देखो भैया! शब्दका विषय भी एक महान शब्दशास्त्रको बना देगा। ये शब्द जो हम बोलते हैं ये कहीं किसीके कानोंमें नहीं जाते, क्योंकि जो हमने शब्द बोल दिये वे यदि किसी एकके कानमें चले गए तो बाकी जो २००-४०० लोग बैठे हैं वे उन शब्दोंको सुननेसे वञ्चित रह जायेंगे। यदि ऐसा होने लगे कि जिधरको मुख करके बोल रहे हैं उधरके ही लोग उन शब्दोंको सुन पायें, पीछे बैठे हुए लोगोंको वे शब्द सुनाई ही न पड़ें तब तो फिर वे पीछे वाले बेचारे शब्द सुननेसे वञ्चित रह जायेंगे। किन्तु ऐसा नहीं होता है। चारों तरफ भाषावर्गणायें हैं उन भाषावर्गणावोंमें शब्दोंका परिणमन हो जाता है। और सभी लोग अलग-अलग उन शब्दोंको सुन लेते हैं। इन शब्दोंकी स्कंधसे उत्पत्ति बताने के लिए यह गाथा कही गयी है।

शब्दकी अव्यञ्ज्यता व उत्पाद्यता—शब्द पुद्गलकी पर्याय है, आकाश आदिककी पर्याय नहीं है। कुछ दार्शनिक लोग ऐसा मानते हैं कि ये शब्द सदा रेडी रहते हैं, बने हुए रहते हैं, तैयार पड़े हैं, उन शब्दोंकी उत्पत्ति नहीं करनी पड़ती, किन्तु जैसे घड़ा ढका है कपड़े से तो घड़ा वहाँ मौजूद है, केवल एक कपड़ेका आवरण हटाना है, घड़ा दिख जायगा। ऐसे ही शब्द सब जगह मौजूद हैं, केवल एक आवरण हटाना है। तो कुछ दार्शनिक लोग शब्दों को व्यक्त करने योग्य मानते हैं, लेकिन शब्द व्यञ्ज्य नहीं है। जहाँ अन्तरंग बहिरंग कारण सामग्री योग्य साधन मिल जाते हैं वहाँ भाषावर्गणाके योग्य ये पुद्गल स्वयं शब्दरूप परिणम जाते हैं।

शब्दकी हेयता व आत्मतत्त्वकी उपादेयता—ये शब्द मायामय हैं। इन मायामय शब्दोंमें जो पुरुष आसक्त होते हैं, लीन होते हैं वे रागद्वेषके वश होकर कर्मबन्ध करते हैं, इस लोकमें भी पराधीन हो जाते हैं और कर्मके आधीन होकर भावी कालमें भी वे पराधीनताका दुःख सहते हैं। ये शब्द हेय तत्त्व हैं अर्थात् ये शब्द भी हेय हैं, ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। यहाँ तक कि अपने अन्तरंगमें जो ध्यानके लिए शब्द उत्पन्न होते हैं वे भी हमारे किसी न किसी रूपमें बाधक हैं। ऐसे इन शब्दोंका भी अभाव हो जाय तब इस आत्माकी आत्मोपलब्धि होती है। ये हेय तत्त्व हैं, इस कारण शुद्ध आत्मतत्त्व ही उपादेय है ऐसा तात्पर्य लेना। ये बाह्य पौद्गलिक बातें ये समस्त हेय हैं, इनसे हटना और निज सहज ज्ञानानन्दस्वरूपमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपना उपयोग देना यही कल्याणका मार्ग है।

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेत्ता।
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥८०॥

नित्यदृष्टिमें मोहविघात—यह जगत जो कुछ दीख रहा है यह तो बिघट जाता है, ओझल हो जाता है, यह सारभूत नहीं है। इस दृश्यमान जगतमें इसका जो मूल कारण है वह है परमाणु। उस परमाणुके स्वरूपका इसमें वर्णन है। जैसे हम अपने आपमें अपना मुख्य आधार जो एक चैतन्यशक्ति है उस चैतन्यशक्तिपर दृष्टि जाय तो रागद्वेष मोह नहीं ठहरता, ऐसे ही इस दृश्यमान दुनियाके कारणभूतपर दृष्टि जाय तो रागद्वेष मोह नहीं ठहरता।

सृष्टिका मूल कारण—कुछ लोग इस दुनियाका कर्ता ईश्वरको मानकर उस ईश्वरको अपनी भक्ति और दृष्टि इस ध्यानसे लगाया करते हैं कि यह प्रभु मुझे दुःख न दें, सुख दें, सद्बुद्धि पैदा करें आदिक सारी बातोंको लिए यह सारा जगत चराचर है, तो जीव और अजीवमें तो जीवमें मूल कर्ता है यह चैतन्यशक्ति और अजीवका मूल कर्ता है परमाणु। यही है सृष्टिकर्ता और ये हैं सब अनन्त, अतएव सभी सृष्टियोंमें कोई किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती।

आत्मरक्षाके लिये नित्यतत्त्वकी दृष्टिका अनुरोध—यह परमाणु नित्य है क्योंकि यह एकप्रदेशी है। एकप्रदेशीके रूपसे यह कभी नष्ट नहीं हो सकता। इसमें रूप आदिक सामान्य गुण हमेशा रहा ही करते हैं, अतएव यह नित्य है। देखिए नित्य अपने आपके स्वरूपका बोध होनेसे एक आत्मतृप्ति रहती है और अनित्य पदार्थोंसे उपेक्षाभाव जागृत होता है। आत्मा स्वयं आनन्दनिधान है, क्षमाशील है। वास्तविक क्षमा तो आत्माकी यही है कि यह विषय कषायोंमें न लगकर अपने आपके ज्ञान दर्शन स्वरूपकी रक्षा करे और उसे बिगड़ने न दे, क्षोभ न आने दे। यही है एक उत्तम क्षमा। जगतके अन्य जीवोंसे प्रयोजन क्या है, इनमें राग करने से क्या सिद्धि है और विरोध करनेसे क्या सिद्धि है? राग और विरोध जो किये जाते हैं वे भी स्वप्नकी तरह अपनी कल्पनाएँ हैं, क्षणभंगुर हैं। जो जीव इन कल्पनाओंमें उलझ जाता है, इन क्षणभंगुर घटनाओंमें उलझ जाता है वह न शांत रह सकता है, न अपना भावी जीवन सुधार सकता है।

परमाणुमें अनवकाशताका अभाव—इस दृश्यमान दुनियाका कारणभूत परमाणु नित्य है और उस परमाणुमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण भरे पड़े हुए हैं। उसही प्रदेशमें स्पर्श है, उस ही प्रदेशमें रस है, गंध है, वर्ण है, कोई किसीको रोकता नहीं है, इसलिए यहाँ अनवकाश नहीं है, अर्थात् यहाँ समाने को जगह न रहे ऐसी बात नहीं है। ऐसी ही बात अपने आत्माकी भी निरखें। इस आत्माके जिस प्रदेशमें ज्ञान है, उस ही प्रदेशमें दर्शन गुण है, उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो प्रदेशमें आनन्दगुण है। यह आत्मा भी इस ही तरह अनवकाश नहीं है। अनन्तगुणोंसे यह अपने आपमें स्थान देनेमें समर्थ है।

परमाणुमें सावकाशताका अभाव—इस परमाणुमें एक ही प्रदेश है, दो आदिक नहीं, अतएव यह परमाणु अपने आप ही आदि, अपने आप ही मध्य और अपने आप ही अंत है, इस लिए यहाँ दूसरेका प्रवेश नहीं है। जरा अपने आत्मापर भी दृष्टि दो। यह आत्मा एक अखण्ड है। इस आत्मामें किसी दूसरे आत्माका प्रवेश नहीं है, अतएव यह भी सावकाश नहीं है। इस आत्माका यह ही आत्मा आदि है, यह ही मध्य है और यह ही अन्त है और यह आत्मा द्रव्यश्रुतसे तो प्रतिपाद्य होता है और भावश्रुतसे जाना जाता है। इस आत्माकी जिन जीवोंने सुध नहीं ली वे अब भी रुलते हुए इस संसारमें चले आ रहे हैं।

लोकोत्तर वैभवकी उपेक्षा—अपने आपकी सुध हो जाना लोकोत्तर वैभव है। एक बार इतना साहस तो देखो कि मेरे आत्माका वैभव मात्र यह मैं ही हूँ और यह तीन लोकका सारा जड़ वैभव यह तो धूलवत् है। जो समस्त अचेतन पदार्थोंसे समस्त परिग्रहोंसे एक बार भी इस तरहसे देख लेता है कि है क्या, यह सब धूल है। अरे इस जड़ वैभवके कारण यदि कुछ यहाँ इज्जत भी बढ़ी, इज्जतके लिए तो लोग धन कमाया करते हैं। धन कमानेका, अधिकसे अधिक संचय करनेका और प्रयोजन क्या है? यही न कि हम भूखे न रहें, ऐसा न हो कि किसी दिन रोटी न मिले। अरे यह प्रयोजन नहीं है। सब जानते हैं कि रोटी खानेके लिए ही लोग धनकी कमाई नहीं करते हैं। लोग धनकी कमाई करके, धनका संचय करके इज्जत चाहते हैं। अरे जिस दुनियामें इज्जत चाहते हो वह दुनिया है क्या? जिन लोगोंमें इज्जत चाहते हो वे लोग हैं क्या? हम आपकी ही तरह कर्मोंके प्रेरे वे सब भी जीव हैं। विपदावोंसे परेशान होकर संसारमें जन्म-मरण कर रहे हैं। अरे वे सब भी मायारूप हैं, स्वयं दुःखी हैं, ऐसे इन जीवोंने मानो कुछ यश भी गा दिया, इज्जत भी कर दिया तो इससे आपके आत्माका कौनसा सुधार हो जायगा? यहाँके सभी जीव मोही मलिन दिखते हैं, नरक निगोद के पात्र बने हुए हैं।

प्रभुपूजाका प्रयोजन—भैया! प्रभुपूजासे यही तो हम अपने आपमें भावना लायें कि हे प्रभो! मुझे तुम अपने निकट बुला लो। यहाँ रहनेका मेरा धाम नहीं है। निकट बुलाने का नाम जगहके निकट नहीं, किन्तु जैसा तुम्हारा स्वरूप है वैसा ही स्वरूप मेरा होने लगे, बन जाय, इससे ही मेरा भला है। बाकी इस दुनियामें जहाँ हम रह रहे हैं यह सब मायाजाल है, विनश्वर है। भिन्न है। इसमें मेरा धाम नहीं है, रहने योग्य स्थान नहीं है। जितना भगवानकी भक्ति द्वारा, ज्ञानचर्चा द्वारा, ध्यान द्वारा परपदार्थोंसे हटकर अपनी ओरका झुकाव होगा उतना ही भला है और इसी झुकावके लिए ऋषिसंतोंने पदार्थोंके यथार्थस्वरूपका वर्णन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया है ।

स्कन्धभेतृत्व—यहाँ परमाणुकी चर्चा चल रही है । परमाणुका अर्थ जो कुछ यहां दिखता है इन दिखने वाली चीजोंमें मूलतत्त्व क्या है, असली चीज क्या है जो मिट न सके ? यह भींत तो मिट जायगी, यह शरीर तो बिखर जायगा । न मिटने वाली यहां कोई वस्तु है अथवा नहीं ? परमाणु है । यह परमाणु स्कंधोंमें पड़े हुए हैं, किन्तु जब इन परमाणुवोंमें किसीमें योग्य स्नेह न रहेगा तो इन स्कंधोंका भेद न हो जायगा और इससे छूट जायेंगे । जैसे कि जिस आत्मामें स्नेह नहीं रहता, रागद्वेष मोह परिणाम नहीं रहता तो वह कर्मस्कंधों से अलग हो जाता है, छूट जाता है । इसी तरह इन दिखने वाले पदार्थोंमें से परमाणु भी जब अपने एक प्रदेशमें उस प्रकारका स्नेह नहीं रहता तो विघट जाया करता है ।

दर्शनकला—भैया ! यह सब देखनेकी कला है । जैसी किसी पुरुष अथवा महिलाको किसीको रागभावकी दृष्टि करके देखा तो उसमें स्वच्छता, सुन्दरता, साफ इस तरहकी दृष्टि बन जायगी, यह नजर आने लगेगा और जब बुद्धि काबूमें हो, रागद्वेष भाव न जग रहा हो, केवल कल्याणमात्रकी स्थिति हो तो ये शक्ल सूरत सब पुरुषों जैसी साधारण मालूम होती हैं । जैसे कोई मरघटमें पड़ी हुई खोपड़ी बेढब ढंगकी दिखती है ऐसे ही ये सारी सूरतें बेढंगी दिखेंगी । सब दृष्टिका बल है । अज्ञानभावसे कोई जीव शान्त अथवा सुखी नहीं हो सकता है । परपदार्थोंको अपनाना, परिग्रहोंमें तीव्र ममता रखना यह घोर अज्ञानभाव हैं । इनमें पड़ कर परेशान होता है यह जीव । शरण चाहता है दूसरोंसे, पर शरण मिलती नहीं है तो दुःखी होता है । मेरा दुःख मिटे । अरे दुःख कैसे मिटे ? दुःख तो तुमने ही ममतापरिणाम करके बनाया है । उस ममतापरिणामको मेट लो तो अभी सुखी हो जावोगे ।

निःस्नेहतासे विपदाका अभाव—किसी बालकके हाथमें कोई खानेकी चीज हो तो उस बालकपर घरके या निकटके बालक टूट पड़ते हैं उस खाने वाली चीजको छीननेके लिए, वह बालक दुःखी होता है । अरे बालक उस चीजको फेंक दे, पैरोंसे कुचल दे, लो सारे दुःख मिट जायेंगे । अरे फेंक दिया, कुचल दिया तो फिर कोई बालक काहेको लड़ेगा ? ऐसे ही ये संसारी बालक अपने उपयोगमें इन सभी चीजोंको पकड़े हुए हैं, इसीलिए अनेक प्रकारके विवाद, कलह, लड़ाई झगड़े होते रहते हैं । यह सारी सम्पत्ति मेरे ही घरमें आ जाय, ज्ञानमें यशमें, धनमें, व्यापारमें सभी बातोंमें अनेक प्रकारके विवाद बने रहते हैं, झंझट बने रहते हैं ।

मायाकी प्रीतिमें अलाभ—भैया ! सीधासा तो काम था कि धर्मके अनुकूल अपनी प्रवृत्ति बनाते । जो कुछ भी आय होती उसमें धर्मका विभाग और पालनपोषणका विभाग करके अपनी आजीविका चलाते । यह कला सबमें मौजूद है, सभी गुजारा कर सकते हैं । बजाय यह भावना भानेके उल्टी यह भावना भाने लगे कि हमारा तो इतनेसे काम ही नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चलता। लखपति होनेसे तो कुछ भी सिद्धि नहीं है, इतनेसे तो हमारा गुजारा ही नहीं चलता है। करोड़पति होना अच्छा है। करोड़पतियोंकी वाञ्छा देखो—वे भी तृष्णावश अपनेको दुःखी अनुभव करते हैं। तृष्णावश उस धन वैभवकी कमाईके लिए अथक परिश्रम करते, यत्न करते, अनेक कोशिशें करते, इसीसे यह जीव सदा परेशान रहता है, रहेगा। अन्तमें किसीके पास कुछ नहीं। लेकिन जितना जो कुछ मिला है उतनेसे सन्तोष नहीं हो पाता और उतनेका भी सुख नहीं भोगा जा सकता है। अरे ये सब धन वैभव विनश्वर हैं, मायारूप हैं। उसमें तो यथार्थ मूल परमाणु ही तत्त्व है। यह परमाणु स्कंधोंका भेद करने वाला है।

स्नेहसे मायाजालकी वृद्धि—इस ही प्रकार जब इस एकप्रदेशी परमाणुमें योग्य स्नेह भाव आ जाता है, स्निग्धता आ जाती है तो यह स्कंधोंको बना लेता है। जैसा इस जीवमें जब बन्धनके योग्य स्नेह रहता है, रागद्वेष मोह रहता है तो यह कर्मस्कंधोंका कर्ता हुआ करता है। ऐसे ही यह परमाणु इन स्कंधोंका कर्ता बन जाया करता है। देखिये कोईसा भी विवाद हो उस विवादका प्रारम्भिक मूल अत्यन्त छोटा हुआ करता है। उस छोटे मूलके बाद विवाद होता है, वह विवाद बड़े रूपमें हो जाया करता है। जैसे भाई-भाईमें लड़ाई। पार्टीबन्दी, ये सब होते हैं, कचहरियाँ चल जाती हैं तो उसका भी कारण मूलमें ढूँढ़ने चलो तो न कुछ जैसा मिलेगा। वह मौलिक कारण ऐसा होगा जो हास्यके योग्य होगा। ऐसे ही जानो कि यह जो इतना बड़ा विस्तार बन गया है दुनियाका, उस दुनियाके विस्तारका मूलकारण केवल एकप्रदेशी यह परमाणु है। अथवा यह जितना जो कुछ जीवलोकका विस्तार बन गया है, इतना रागादिक भावोंका विस्तार बन गया है उसका मूल कारण केवल एक अज्ञानभाव है। कौनसा कि जीवने इतना भर मान लिया इस देहके प्रति कि यह मैं हूँ, इतना ही मात्र अपराध किया। इस अपराधका दण्ड, इस अपराधका विस्तार इतना बड़ा बन गया कि ये सारी परेशानियाँ हम आपको लग रही हैं।

अज्ञानविपदा—क्या यह कम विपदा है किसीको मान लिया कि यह मेरा है, किसीको मान लिया कि यह गैर है, इतनी मनमें कल्पना उठना क्या यह कम विपदा है? सारी विपदावोंका यह एक मूल उपाय बना है। जीव-जीव सब एक समान हैं। कोई आज आपके पास आ गया, आपके घर पैदा हो गया तो उसे आप मान लेते कि यह मेरा सब कुछ है और वही मरकर किसी पड़ौसीके यहां उत्पन्न हो जाय और फिर वही जीव आपको दिखे तो आप उसे अपना नहीं मानना पसंद करते हैं। यह विडम्बना नहीं है तो फिर और क्या है? आज जो जीव गैर माने जा रहे हैं, वही मान लो आपके घर आकर पैदा हो जावें तो आप उन्हें ही अपना सर्वस्व मान लेते हैं। तो यह क्या है? यह अज्ञानकी विडम्बना है कि नहीं? ज्ञानी जीव पास आये हुए जीवोंमें भी वही भावना करते हैं जो भावना सब जीवोंमें किया करते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। सर्व जीव एक चैतन्यस्वरूप हैं और सब मुझसे अत्यन्त जुदे हैं। यह तो एक सफर है। इस सफरमें कुछ समयके लिए अपनी व्यवस्था बनानेके प्रयोजनसे इन यात्रियोंसे परिचय बनाया गया है ताकि हमारी यह जरासे वर्षोंकी सफर ऐसी बीते कि धर्ममार्गमें हम अग्रसर बने रहें। इसके लिए थोड़ा-सा यह परिचय बना हुआ है।

निरंश तत्त्वकी मार्गणा—परमाणुकी चर्चामें ऐसा ध्यान देना चाहिए कि जो कुछ यहां दिखने वाला है इसके टुकड़े होते होते आखिर कोई टुकड़ा ऐसा बन जाता है जिसका दूसरा विभाग ही नहीं हो सकता, वह हाथों नहीं बनाया जा सकता, वह अपने आप बनेगा। वह परमाणु अपने एक प्रदेशरूपमें तो है, इस मंदगतिसे चलकर दूसरे पासके आकाश प्रदेश पर पहुंच जाय, इतनेमें जितना समय व्यतीत होता है उससे एक समय कहा करते हैं, और इस लोकाकाशपर ऐसे-ऐसे कालाणु असंख्यात हैं, उन कालाणुवोंके बंधका विभाग वाला यह परमाणु है, बल्कि यों समझो कि परमाणु सब मापोंका कारण है। छोटासे छोटा द्रव्य कितना ? एक परमाणुका। छोटासे छोटा क्षेत्र कितना ? एक परमाणु जितनेमें समा सके वह छोटासे छोटा क्षेत्र है। छोटासे छोटा काल कितना ? एक परमाणु अपने प्रदेशका अतिक्रमण जितने समय कर सके वह छोटासे छोटा समय है और छोटासे छोटा भाव क्या ? वह जैसा कि एक परमाणु, जैसे कि वह अविभक्तप्रदेशी है अथवा जघन्यगुण वाला परमाणु है। वैसे ही जघन्य भाव मिलेगा। यह परमाणु सबका मापदण्ड बना हुआ है, यही है इस सारी दुनियाका मूल कारणभूत। इसे दृष्टिमें न लेकर जो जीव इन स्कंधोंको ही अपना सर्वस्व समझते हैं उनके मोह बढ़ने लगता है।

परेशानी और उसके दूर करनेका उपाय—यह सारा जगत मोहसे परेशान है। बड़े बूढ़े, बच्चे बालक इन सबके यही रोग लगा है। जिसके पास बैठो वही कुछ न कुछ अपने दुःखकी कहानी सुनाने लगता है। सुखकी कहानी सुनाने वाले कम मिलेंगे और जो सब बातोंसे लोकव्यवहारसे परिपूर्ण है और सुखकी कहानी भी कदाचित् सुनाने लगे तो भी उसकी अपेक्षा दुःखकी कहानी कई गुणा सुनायेगा। कारण यह है कि दुःख सहा नहीं जाता और ऐसी स्थितिसे दुःख ही दुःख नजर आता है। जैसे एक लाखका धन हो, उसमें १ हजार घट जाय तो ९९ हजारका सुख अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु उस एक हजारके नुक्सानका दुःख अनुभव करते हैं। ऐसी ही बात सब परिस्थितियोंकी है। किसी भी परिस्थितिमें यह जीव ऐसा सन्तोष नहीं करता कि अब इससे आगे बढ़ानेसे क्या लाभ है ? बढ़ें तो आत्माके गुणोंके विकासमें बढ़ें। अपने भीतरके ज्ञानप्रकाशकी वृद्धि करें और इसका यत्न भी करें। इस ओर दृष्टि उनकी ही जाती है जिनका होनहार अच्छा है।

योग्य आचारका अनुरोध—भैया ! कुछ भी सोच ले यह जीव, कुछ भी कर ले यह

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव । आखिर अपने किए का फल अवश्य पा लेगा यह जीव । वर्तमानमें ही देख लो, कोई सद्व्यवहार करता है तो उसे फल उसका बादमें मिल जाता है । ऐसे ही जो जीव असद्व्यवहार करता है, हिंसा, झूठ चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापोंमें रमता है, मिथ्यात्वका खण्डन नहीं कर सकता, सम्यक्त्वकी उपासना नहीं कर सकता वह जीव वर्तमानमें भी दुःखी है और भविष्यकालमें भी दुःखी होगा । आत्माका दुःख जैसे मिटे वैसा उपाय बना देना ही वास्तविक क्षमा है । अपना ही दुःख मिटा ले तो क्षमा बन जायगी । चलो न सही दूसरेके दुःखको मिटाने की बात, अपना ही दुःख मिटा लें, सही ईमानदारीसे सोचो—किस प्रकारका दुःख लगा है और यह दुःख किस प्रकारसे मिट सकेगा ? उस उपायको कर लो, अब क्षमावान हो गए । जो भी आप उपाय करेंगे सही अपने आपको शान्त रखनेके लिए, उस उपायसे दूसरोंका भी भला होगा और अपने आपका भला तो सुनिश्चित ही है ।

प्रभुताकी उपासना संकटमुक्तिका उपाय—यह जीव अपने आपके प्रभुपर ही क्रोध कर रहा है । दगा, विश्वासघात, हिंसा, झूठ, चोरी किसी प्रकारके अनेक गड़बड़ परिणाम करके यह जीव अपने आपका घात कर रहा है । किसका ? अपनी प्रभुताका । इस आत्मामें अनन्त प्रभुता है । जिसका ज्ञानस्वभाव इतना उदार है कि सारे लोकालोकको एक दृष्टिमें जान ले । अपने आपमें विकल्प बनाकर यह जीव अपने आपकी प्रभुताका घात किए जा रहा है । इस खुदको बचावो, अपने आपकी इस प्रभुतापर कुछ क्षमाभाव तो लावो । अपने आपको व्यर्थमें क्यों सताया जा रहा है, यह शिक्षा हमें प्रभुउपासनासे मिलती है । हम प्रभुभक्तिसे अपने परिणाम ऐसे बनाएँ कि अपने आपको विषयकषायोंमें न लगने दें । दूसरे जीवोंको जिसमें दुःख उत्पन्न होता हो ऐसा कोई कार्य न करें । यदि ऐसा कार्य कर लिया तो इससे स्वयंको भी प्रसन्नता रहेगी, दूसरे लोग भी प्रसन्न रहेंगे और यही उत्तम क्षमा धारण करनेका प्रथम कदम होगा ।

परमाणुकी निरंशताका अवगम—यहाँ शुद्ध परमाणुकी चर्चा की जा रही है । जैसे निरंश सिद्ध भगवानके ध्यानमें विषयकषायको अवकाश नहीं है, इसी प्रकार निरंश परमाणुके स्वरूपके ज्ञानके समय विषयकषायका आक्रमण नहीं है । सिद्धकी निरंशता अखण्डरूपसे है, हैं वे यद्यपि असंख्यातप्रदेशी, किन्तु है त्रिकाल अखण्ड पदार्थ चेतनतत्त्व । परमाणु भी अखण्ड है वह भी निरंश है । देखिये भगवानका भी निजमें सर्वत्र एक वही परिणमन है । जो परिणमन प्रभुके एक प्रदेशमें है वही सर्वप्रदेशोंमें है । जैसे भगवान केवली एकप्रदेशमें हुए केवलज्ञानांशसे, एकसमयसे समय रूप व्यवहारकालका और संख्याका परिच्छेदक है, ज्ञायक है, उसी प्रकार परमाणु भी एक प्रदेशसे मंदगतिसे अणुसे अन्य अणुपर व्यतिक्रमसे समयरूप व्यवहारकालका परिच्छेदक अर्थात् भेदक होता है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमाणुमें संख्याकी प्रविभक्तता व परमाणुपरिज्ञानसे लाभ—संख्याको आठ प्रकारों में जानिये—(१) जघन्य द्रव्यसंख्या, (२) उत्कृष्ट द्रव्यसंख्या, (३) जघन्य क्षेत्रसंख्या, (४) उत्कृष्ट क्षेत्रसंख्या, (५) जघन्य व्यवहारकालसंख्या, (६) उत्कृष्ट व्यवहारकालसंख्या, (७) जघन्य भावसंख्या, (८) उत्कृष्ट भावसंख्या। जघन्य द्रव्यसंख्या तो एक परमाणुरूप है, उत्कृष्ट द्रव्यसंख्या अनन्तपरमाणु पुञ्जरूप है। जघन्य क्षेत्रसंख्या तो एक प्रदेशरूप है, उत्कृष्ट क्षेत्रसंख्या अनन्तप्रदेशरूप है। जघन्य व्यवहारकालसंख्या तो एक समयरूप है, उत्कृष्ट व्यवहार-कालसंख्या अनन्तसमयरूप है। परमाणुमें वर्णादिककी जो सर्वजघन्य शक्ति है वह जघन्य-भावसंख्या है, उस ही में जो वर्णादिककी सर्वोत्कृष्ट शक्ति है वह उत्कृष्ट भावसंख्या है। इन संख्याओंका परिच्छेदक भी एक अणु है। देखिये यहाँ शुद्ध अणुकी चर्चा चल रही है। इस मायाजालका मूल अन्तस्तत्त्व यह अणु है। इसके परिज्ञानमें जो उपयोग रहता है वह उपयोग मायाजालके विषयसे दूर रहता है। पुद्गलके अवगमके प्रसंगमें परमाणुका अवगम विषयोंसे दूर रखता है। इस कारण भी परमाणुका परिज्ञान यहाँ उपयोगी समझा गया है और इस गाथामें परमाणुकी एकप्रदेशरूपताका प्रतिपादन किया है।

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणेहि ॥८१॥

शुद्ध परमाणुका महत्त्व—द्रव्यके नातेसे जो एक शुद्ध सिद्ध भगवानका महत्त्व है वही परमाणुका महत्त्व है। हम आप जीव हैं, सिद्ध भगवानकी जातिके हैं, वर्तमानमें दुःखमें पड़े हुए हैं। दुःखसे निवृत्त होना है इस प्रयोजनसे इस निजके स्वार्थकी सिद्धिके लिए भगवान की महिमा गाया करते हैं। ठीक हम अपनी दृष्टिसे सोचते हैं और यहाँ तक भी सोच सकना उचित है कि मान लो इस दुनियामें समस्त द्रव्य होते, केवल एक जीवद्रव्य ही न होता तो क्या व्यवस्था थी? कौन जानने वाला था, किसको जाना जाता? कुछ भी वहाँ व्यवस्था न होती। इससे यह बात ठीक है, फिर भी परमाणुकी यह शुद्धता जाननेमें भी दो बातें गर्भित हैं—एक तो यह कि जैसे सभी द्रव्योंकी शुद्धता हम जानें तो पुद्गलकी भी शुद्धता जाननेमें आना चाहिए। दूसरी बात यह है कि हमारा जितना जो कुछ लगाव है, जो कुछ भ्रमणका कारण है, क्लेशका कारण है, उनका आश्रय, उनका निमित्त ये पुद्गल स्कंध हैं, तो इनसे हमारा वास्ता पड़ा करता है और वह अहितरूपमें तो इस अहितकारी आश्रयभूत, निमित्तभूत स्कंधोंकी असलियत जाननेमें आ जाय तो फिर ये राग मोह नहीं ठहर पाते हैं। तो अपने पवित्र स्वार्थके लिए भी पुद्गलकी शुद्धता जानना आवश्यक हुई।

शुद्धद्रव्यदृष्टिका प्रभाव—शुद्ध द्रव्यके देखनेमें प्रथम तो यह बात है कि किसी भी द्रव्यको देखे तो उपयोगकी पद्धति ही विलक्षण हो जाती है। धर्मद्रव्यकी शुद्धतामें उपयोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाय तो क्या वहाँ लाभ नहीं मिलता ? मिलता है। अशुद्धको यही सर्वस्व है, इस प्रकार जाननेमें हानि ही हानि उठानी पड़ती है और किसी भी शुद्ध द्रव्यके ज्ञातृत्वमें हितकी भी सिद्धि हो सकती है। उस प्रकारसे जाननेमें इसे लाभ होता है। इस गाथामें परमाणु द्रव्यके गुण और पर्याय किस प्रकार रहा करते हैं, इसका वर्णन है। परमाणु शब्दके सुनते बोलते ही हमारी दृष्टि अविभागी पुद्गलपर जानी चाहिए जो स्कंधोंसे, इन दिखने वाली चीजोंसे बिछुड़ कर अन्तमें कोई विभागरहित द्रव्य रह जाय।

परमाणुके मुख्य गुण और परिणमन—परमाणुके ४ गुण हैं—रूप, वर्ण, गंध, स्पर्श। और इन चारों गुणोंके ५ परिणमन हैं। प्रत्येक परमाणुमें एक साथ ५ परिणमन होते हैं। रस ५ तरहके हैं—खट्टा, मीठा, कडुवा, तीखा और कषैला। इन ५ प्रकारके रसपरिणमनों में कोई प्रकारका रस एक होता है। वर्ण ५ प्रकारके हैं—काला, पीला, नीला, लाल, सफेद। इन ५ वर्ण परिणमनोंमें से कोई एक परिणमन होता है, काला हो या अन्य प्रकार हो। दो गंध परिणमन हैं—सुगंध और दुर्गन्ध। इनमें से एक परिणमन परमाणुमें है और स्पर्श चूँकि स्पर्शनइन्द्रियसे यह परिणमन जाना जाता है, अतः एक स्पर्श गुण कहा है। वहाँ तो जैसे चैतन्य एक कहकर चैतन्यके दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन, और ये दोनों गुण पृथक् हैं, इसी प्रकार स्पर्श कहनेपर भी इस स्पर्शके दो भेद हैं जिनका नाम हमें नहीं मालूम, पर एक भेदमें से तो शीत और उष्ण—इन दो प्रकारोंमें से कोई परिणमन होगा और एक भेदमें से स्निग्ध और रूक्ष—इन दो में से कोई परिणमन होगा। इस प्रकार स्पर्श गुणके ये दो परिणमन होते हैं। यों एक परमाणुमें ५ परिणतियां होती हैं, इस दृष्टिसे देखो तो परमाणु कितनी तरहके सब ज्ञात होंगे। ५ रसोंमें से एक, तो ५ संख्या रख लो, ५ वर्णमें से ५ संख्या रख लो, २ गंधमें से दो गंध रख लो और चार स्पर्शमें दो और दो गुणित रख लीजिए। अब इनका गुणा कर दीजिए तो परमाणु २०० प्रकारके होंगे। सभी परमाणुवोंमें रस, वर्ण, गंध और स्पर्श ये ४ गुण हैं।

गुणका स्वरूप—गुण उसे कहते हैं जो सहज आनन्दमय हो, ध्रुव हो, एक साथ सदा रहने वाला हो। जैसे आम अभी हरा है, कुछ समय बाद पीला बन गया तो हरा तो नष्ट हो गया, पीला बन गया, पर हम आपसे पूछें कि पीला बन कौन गया ? रंग बन गया पीला। तो जो भी बन गया पीला वह तो ध्रुव कहलायेगा ना ? रंग बन गया पीला, जो पहिले कैसा था ? हरा था। तो रंग सामान्य जिसे रूप शक्ति कहेंगे वह रूपशक्ति पहिले भी है, अब भी है, सदाकाल रहेगी। उस रूपशक्तिके परिणमन हो रहे हैं, तो जो शक्तिरूपमें हैं वे ये ४ गुण हैं, और वे ही व्यक्तरूपसे जिन-जिन पर्यायोंमें परिणत हुए हैं, वे पर्यायें हैं।

परमाणुकी शब्दरहितता—ये परमाणु शब्दके कारणभूत तो हैं, पर स्वयं शब्दरहित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। ये स्कंध शब्दके व्यक्तरूप कारण होते हैं और यों समझिये कि दो प्रकारके स्कंध हैं—महास्कन्ध और भाषावर्गणाके स्कन्ध। जब हम जीभकी ठोकर लगाते हैं या कंठपर कुछ वजन डालते हैं तब शब्द निकलते हैं तो जीभका दांतमें लगना, तालूमें लगना, मुर्द्धामें लगना आदि यह तो है महास्कंधकी भिड़न्त, और इस महास्कंधके संघटनका निमित्त पाकर जो भाषावर्गणा के शब्द भरे पड़े हुए हैं वे शब्दरूप परिणम जाते हैं और इस प्रकार शब्दोंकी तरंगें उठती हैं। तो इन दोनों प्रकारके स्कंधोंसे आश्रयभूतपनेकी दृष्टि और उपादानकी दृष्टिसे परमाणु कारण तो हो गया, पर स्वयं शब्दरूप नहीं हुआ। एक परमाणुमें शब्दकी उत्पत्ति नहीं होती। यह परमाणु अशब्द है।

आत्मदृष्टान्तपूर्वक परमाणुके अशब्दत्वकी सिद्धि—जैसे यह आत्मा भी शब्दका कारणभूत है, न हो आत्मा तो ये वचन कैसे निकलें ? यह भाषा, ये उपदेश कहाँसे प्रकट होते ? तो यह आत्मा इसी प्रकार शब्दोंका कारणभूत है। तालू ओंठ जीभ इनका व्यापार मुर्दमें तो नहीं होता। तो इसी प्रकार शब्दका कारणभूत है परम्परया आत्मा, फिर भी निश्चयसे यह आत्मा शब्दज्ञानका विषयभूत तक भी नहीं है, यह तो अतीन्द्रिय ज्ञानका विषय है। और शब्दादिक पुद्गल पर्यायरूप भी नहीं होते, इस कारण यह आत्मा शब्दरहित है। इस ही प्रकार यह परमाणु शब्दका कारणभूत है। महास्कंधमें रहने वाला परमाणु भी परम्परया या निमित्तरूपसे शब्दका कारणभूत है और भाषावर्गणाको परमाणु भी कारणभूत है, लेकिन परमाणु स्वयं शब्दरहित है।

शुद्ध ज्ञानमें सहज आनन्दका चमत्कार—भैया ! हम सबको जानना चाहते हैं, जानने का यत्न है हम जीवको भी जानते हैं, अजीवको भी जानते हैं, पर जीवको जानें तो जीवके शाश्वत स्वभावरूप चैतन्यशक्तिरूपसे जानें। इस शुद्ध जाननसे एक बहुत बड़ा चमत्कार आत्मा में होगा। अनाकुलता पैदा हो, सहज आनन्द जगे, इससे भी बढ़कर कोई चमत्कार है क्या दुनियामें ? उन जीवोंको देखो तो उनमें उनको चैतन्यस्वभावरूपमें देखो और पुद्गलको देखो तो इन स्कंधोंमें इन स्कंधोंके कारणभूत अविभागी परमाणुको निरखो। ज्ञान तो होना ही चाहिए। अज्ञान अंधेरेसे बढ़कर कुछ पाप नहीं है। सबसे बड़ा पाप अज्ञान अंधकार है। अज्ञान अंधकार नाम मिथ्यात्वका है। आत्माके स्वरूपका दर्शन न होना, इस आत्माको सहज रूपसे न परखा जाय वह अज्ञान अंधकार है। किन्तु इस अज्ञान अंधकारको मिटानेके लिए जो ज्ञान करना होता है और जिसकी विशेषतासे यह अज्ञान अंधकार मूलतः नष्ट होता है तो वह श्रुत शब्द भी ज्ञातव्य है।

द्रव्यके स्वरूपका त्रिकाल अपरित्याग—यहाँ परमाणुकी चर्चा है, परमाणु अविभागी है और ५ पर्यायों वाला है, शब्दरहित है। शब्दरूप परिणम करनेका स्वभाव तो इसमें है, स्कंध

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

है, लेकिन एकप्रदेशी होनेके कारण इसमें शब्द पर्यायकी परिणति नहीं जा सकती, इस कारण यह शब्दरहित है, यह स्कन्धमें रहता हुआ भी स्कन्धसे अपना भिन्न स्वरूप रख रहा है। जो कुछ यहाँ दिखता है, यह ठंडा है, यह गर्म है, इसमें एक परमाणु कहाँ दीखा ? अनन्त परमाणुवोंका एकत्व परिणम हो गया है, ऐसी यह स्कन्धकी दशा है। तो बन्धके प्रति ऐसा एकत्व परिणमन होकर भी प्रत्येक परमाणु अपना-अपना सत्त्व रख रहा है। वे सब यों ही एक नहीं हो गए, फिर वे बिखरें तो अटपट ढंगसे बिखरना किसीका कुछ बन जाय, वह परमाणु स्कन्धसे भी सब अपना-अपना सत्त्व अपने आपमें रक्खे हुए है। स्कन्धोंमें छुपकर भी, आन्तरिक होकर भी, गर्भित होकर भी परमाणु अपने स्वभावको नहीं छोड़ता, इसलिए वह परमाणु प्रत्येक एक-एक द्रव्य है। जैसे कि कर्म स्कन्धके पिंडसे यह आत्मा आवृत्त है तिसपर भी यह आत्मा अपने स्वरूपका परित्याग नहीं करता। यह अपने स्वरूपसे वह आत्मा ही आत्मा है, ऐसे ही इन स्कन्धोंसे भी इस परमाणुका सत्त्व अपने अपनेमें पड़ा हुआ है।

अज्ञानविलयकी प्रेरणा—भैया ! अज्ञान अंधकार मिटाने और इसको धुन बनावो कि यह जगत असार है, इसमें जो समागम मिले हैं वे मूढ़ बनानेके लिए तो मिले हैं, पर कल्याण के लिए नहीं। जो भी परिग्रह हैं चेतन अचेतन सभी परिग्रह इतने क्या, इससे करोड़गुना परिग्रह अनेक भवोंमें पाया, लेकिन सब छोड़कर फिर अकेलाका अकेला रीता यहाँ आना पड़ा। यहां भी जो कुछ मिला है इसमें से रंचमात्र भी साथ न जायगा। बस उसकी वजहसे जो विचार गड़बड़ बनाया और पापपरिणाम बनाया उनका मात्र फल भोगना होगा। यहाँके ये प्राप्त हुए परिग्रह कुछ भी मदद न देंगे। अतः इतना साहस बनायें कि परवस्तुवोंसे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है। परिग्रहोंकी कमीमें तो काम निकल जायगा, पर परिणामोंके मलिन करनेसे जो आन्तरिक बाधा होती है उससे तो काम नहीं निकल सकता है। तो बाहरमें जो कुछ होता है होने दो, अपने आपमें मलिनताका परिणाम न जगना चाहिये।

प्रभुकी आज्ञा—हम प्रभुकी भक्ति तो करें और उनका कहना एक भी न मानें तो फिर प्रभुकी भक्ति कहाँ रही ? मोहवश अपनी जिद्द पर ही अड़े रहें और प्रभुवचन न मानें तो क्या उसे प्रभुभक्ति कहेंगे ? भगवानका आदेश है कि हे भव्य जोवो ! तुम्हारा स्वरूप वैसा ही है जैसा कि मैं हूं। तुम्हारा कर्तव्य तो निराकुल रहनेका होना चाहिए। शान्ति चाहते हो तो जिस मार्गपर चलकर हमने कृतकृत्यता पायी है उसी मार्गपर तुम चलो। भगवान इन शब्दोंमें नहीं कहते हैं पर भगवानकी ओरसे इन शब्दोंको कहकर भगवानके आदर्शका लाभ उठा लीजिए।

आज्ञाका अधिकारी—जैसे कोई नदीमें से चलकर किनारे लग गया हो तो उस किनारे पहुंचने के बादमें उस पुरुषको यह अधिकार है कि दूसरोंको भी उसी मार्गसे आनेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए कहे। देखो इस ही जगहसे आना, उस जगह न चले जाना। हाँ चले आवो। तुम ठीक आ रहे हो, देखो अब इस तरह आवो। उसे अधिकार है सब कुछ कहनेका, क्योंकि वह नदी को पार करके किनारे लगा है। जिसने नदी की न गहराई जानी, न गैल जानी, न खुद तैर करके किनारे गया और वह जिस चाहेसे कहता फिरे कि चले जावो, पार हो जावोगे तो उसे ऐसा कहनेका अधिकार नहीं है। ऐसे ही जो आत्मा स्वयं रत्नत्रयके मार्गसे चलकर इस संसारसमुद्रको, नदीको पार करके किनारे पहुंचे हैं उन्हें ही अधिकार है उपदेश देनेका कि इस मार्गसे आइए। तो प्रभुके स्वरूपको निरखकर हमें यह सब अपने अन्तरङ्गमें आवाज उठानी चाहिए कि हे नाथ! मुझे तो आप अपने निकट ही बुलायें।

संसारमें रम्य स्थान व पदार्थका अभाव—संसारमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जो रमनेके योग्य हो। कहाँ रमा जाय? ये जड़ वैभव स्वयं अचेतन हैं, मायारूप हैं, इनमें रमना तो अत्यन्त मूढ़ता है। यह जीव जिस शरीरमें रमता है यह शरीर औदारिक है, हाड़, मांस मज्जा, खून इत्यादि सारीकी सारी अपवित्र वस्तुयें इसमें भरी हुई हैं। यह शरीर क्या रमने के योग्य है? इनमें मेरा यश हो, कीर्ति हो, नाम हो इत्यादि जो मानसिक कल्पनाएँ होती हैं ये सब व्यर्थकी हैं। हे नाथ! यहाँ रमने योग्य कुछ भी नहीं है। बल्कि इस विशुद्ध निरपराध ज्ञानमें ये परपदार्थ आते हैं तो इस निरपराध ज्ञानको ये दूषित कर डालते हैं। मेरे तो निरन्तर अविकारता रहे, विकार मेरेमें रंच भी उत्पन्न न हो सकें, ऐसी सामर्थ्य सुबुद्धि हे नाथ! मुझमें प्रकट हो तो इस अनन्तकालमें भ्रमते-भ्रमते आज जो मनुष्यभव पाया है तो समझो कि सार्थक हो गया अन्यथा तो यों अनेक शरीर धारण किये और मरकर फिर वैसे ही शरीर धारण कर जाते हैं।

सबको प्रसन्न करनेके आशयकी असफलता—एक सेठजी थे। उनके थे ४ लड़के। ५ लाखका धन था। १–१ लाख सबको ठीक-ठीक हिसाबसे बाँट दिया। बादमें सेठने अपने सभी बेटोंसे कहा—देखो बेटा! सब लोग बड़ी शान्तिसे न्यारे हो गए, अब उसकी खुशीमें सभी लोग अपने बिरादरीके लोगोंको जीवनवार करा दो। तो सबसे पहिले छोटे लड़के ने बिरादरी के लोगोंको जीवनवार कराया। उसने १०–१२ मिठाइयाँ बनवायीं, सो बिरादरीके लोग जीमते जायें और कहते जायें कि मालूम होता है कि सेठने इसे सबसे अधिक धन दे दिया है। यह सबसे छोटा था। छोटा बच्चा सबसे प्यारा होता है। उसके बाद उससे बड़े ने जीवनवार कराया तो उसने केवल ५ मिठाइयाँ बनवायीं। बिरादरीके लोग खाते जायें और कहते जायें कि यह तो बड़ा ही चालाक निकला। इसने तो ५ ही मिठाइयोंमें सबको टरका दिया। कुछ दिन बाद तीसरे लड़के ने जीवनवार किया तो उसने सीधा पूड़ी और साग ही बनवाया। बिरादरीके लोग खाते जायें और कहते जायें कि यह तो बड़ा ही चालाक निकला,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहे रख लिया हो धन कितना ही, केवल पूड़ी और साग खिला दिया। जब सबसे बड़े लड़के ने जीवनवार कराया तो उसने पकवानका नाम भी न लिया, सीधे चनेकी दाल रोटी बनवाया। बिरादरीके लोग जीमते जायें और कहते जायें कि यह तो सबसे अधिक चालाक निकला, पकवानका नाम भी नहीं लिया, यह तो सबसे बड़ा था, इसने चाहे सब कुछ धन रख लिया हो। तो भाई तुम किनमें अपनी प्रशंसा चाहते हो ? यहाँ कौनसी ऐसी दुनिया है जो सबकी सब मिलकर आपका यश गा सके ? और किसीने यश गा भी दिया तो मरना तो पड़ेगा ही। मरनेपर तो फिर उसके लिये यहाँका सब कुछ बेकार हो जायगा।

एकत्वदृष्टिकी अभ्यर्थना—हे नाथ ! इन विकल्पोंका त्यागकर मेरेमें ऐसी सद्बुद्धि जगे कि मेरेमें परमाणुमात्र भी अलाबला कोई तरंग न रहे। मैं केवल एक इस निज चैतन्य स्वरूपकी उपासना करता रहूं। यह प्रार्थना करने के लिए प्रभुमूर्तिके सामने आया करते हैं। ऐसी स्थिति मिले बिना हम आपका कभी उद्धार नहीं हो सकता। तो इस पिण्डमें रहते हुए इस पिण्डसे न्यारे अपने चैतन्यस्वरूपको निरखनेका हम यत्न करें और इन स्कंधोंमें रहते हुए भी स्कंधोंके स्वरूपसे लक्षणसे पृथक् अपना लक्षण रखने वाले परमाणुपर दृष्टि दें तो ये सारे मायाजाल झड़ जायेंगे और परमार्थ चैतन्यस्वरूप हमारी निगाहमें रहेगा। ऐसी शुद्ध स्थितिमें ही हमारे कल्याणका मार्ग है।

उवभोज्जमिंदियेहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे ॥८२॥

उपभोग्य व अनुपभोग्य पुद्गलोंमें पुद्गलत्व—सब प्रकारके उपभोग्य पुद्गलोंके विकल्पोंका उपसंहार इस गाथामें किया है। जो कुछ इन्द्रियके द्वारा भोगनेमें आ रहा है ये स्पर्श, रूप, रस, गंध, वर्ण सभी पुद्गल हैं। भोगनेमें तो अन्य कुछ आते नहीं, अपनी इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है रागभावसहित जो जीवकी वृत्ति होती है उसमें विषयभूत ये पुद्गल होते हैं और इस कारणसे इन्हें इन्द्रिय द्वारा उपभोग्य कहा गया है। वस्तुतः प्रत्येक पदार्थ अपने आपको अपने आप भोगता रहता है। अचेतन पदार्थ भोगते नहीं हैं, क्योंकि उनके सुध नहीं है। वहाँ भोगना केवल परिणमन मात्रको कहा गया है और जो पदार्थ भोगता है सो यद्यपि वहाँ भी भोगनेका अर्थ परिणमन है, लेकिन चैतन्यभाव होनेसे इसका परिणमन कुछ चेतनाको गर्भित करता हुआ कहा जाता है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही परिणमनका अनुभवन किया करता है। यह जीव भी किसी दूसरे पदार्थको भोग नहीं सकता है। उपयोगमें पर-पदार्थ भोगे जा रहे हैं—यह बात समाये तो उसे परका भोगना कहा करते हैं। जो कुछ इन इन्द्रियों द्वारा भोगा जाता है वह सब पुद्गल है।

कुबुद्धिप्रसारका परिणाम—भैया ! जब इस संसारी जीवपर कुमति छा जाती है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसको इस जड़ पुद्गलमें विशेष ममता उत्पन्न हो जाती है। उस ममताके कारण इस जीवका भला नहीं, किन्तु बुरा ही होता है। इतना विकट कर्मोंका बन्धन हो जाता है जिस कर्मबन्धनकी प्रेरणासे यह जीव भव-भवमें जन्ममरणके दुःख पाता है। सबसे बड़ा काम है मोहका विनाश कर लेना। जिसके मोहका विनाश है वह अन्याय नहीं कर पाता, यह उसकी पहिचान है। मोहमें सिवाय आकुलताके और कुछ भोगनेको मिलता हो तो बतावो। खूब मोह किया, सबको अपने-अपने मोहकी खबर है। मोहके फलमें कुछ लाभकी बात मिल सकी हो तो बतावो। शरीर भी वही न्याराका न्यारा और इसमें अधिष्ठित जीव सबसे न्यारा, इस जीवकी भरपूरता तो ज्ञान और आनन्दके विकासमें है। जहाँ ज्ञानका विकास भी कुछ न हो और शुद्ध आनन्दका भी विलास न हो वहाँ तो वह जीव रीता ही है, पाया कुछ नहीं, खोया ही है।

अतीन्द्रिय आनन्दके परिचय बिना परका व्यामोह—भैया ! जब परव्यामोह नहीं रहता है तब यह दृष्टि बनती है कि मैं किसी भी पदार्थका भोक्ता नहीं हूं, केवल एक अपनी कल्पना बना लेता हूं। जो कुछ इन्द्रियोंके द्वारा भोगनेमें आता है वे सब पुद्गल पदार्थ हैं, सो इन्द्रियाँ जो इस शरीरसे लगी हैं, स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—ये आत्माके स्वभाव नहीं हैं। आत्मा तो अतीन्द्रिय परमात्मस्वरूप है। उससे उल्टी हैं ये इन्द्रियाँ। ये इन्द्रियां भी पुद्गल पदार्थ हैं इन इन्द्रियोंके द्वारा यह जीव तभी भोगनेका यत्न करता है जब इसे अपने वीतराग अतीन्द्रिय सुखका परिचय नहीं होता है, मैं तो सुखस्वभावी हूं इसकी सुध बिना यह जीव इन इन्द्रियोंसे सुख भोगनेका प्रयत्न करता है।

पदार्थकी पूर्णस्वभावता—प्रत्येक पदार्थ पूरा हुआ करता है। अधूराका क्या अर्थ है ? कोई सत् अधूरा भी होता है क्या ? जो भी सत् है वह पूरा है, जैसा तैसा है। यह आत्मा पूरा है, यह दुःखी भी हुआ तो भी एक दुःखकी पूर्ण पर्यायको लेकर दुःखी हुआ। और सुखी हुआ तो सुखकी पूर्ण पर्यायको लेकर सुखी हुआ। जब इसमें ज्ञानप्रकाश हुआ तो पूर्ण ज्ञानप्रकाशपर्यायको लेकर हुआ, पर आत्मा परिणमता है तो पूराका पूरा परिणमता है और वह परिणमन उस कालमें पूरा है। दृष्टि लगावो प्रभुकी ओर। यह प्रभु वीतराग सर्वज्ञ पूर्ण है। अधूरा है क्या ? नहीं। यह पूर्ण है प्रभु, ज्ञानस्वभावसे परिपूर्ण है और इसमें निकलता क्या रहता है ? केवलज्ञान। वह केवलज्ञान भी पूर्ण है कि नहीं ? पूर्ण है। तो पूर्णमें से पूर्ण निकल गया। पूर्ण है ज्ञानस्वभाव। उसमें से पूर्ण ज्ञान केवल निकल आया, पूर्ण निकल आने पर भी वह ज्ञानस्वभाव पूर्ण ही रहा तथा वह निकला पूर्ण, पूर्णमें विलीन हो जाता, नवीन पूर्णका अभ्युदय होता। ऐसे ही हमारा जो भी सत्त्व है, जो भी हम सत् हैं वह परिपूर्ण है। इस परिपूर्ण आत्मसत्से जो भी जब भी निकलता है वह परिपूर्ण निकलता है। जो पर्याय

Version 1

जिस कालमें निकलती है वह पर्याय उस कालमें पूर्ण निकलती है। तो यहाँ भी इस पूर्णसे पूर्ण निकलता है और पूर्ण निकलनेके बाद भी यह मैं पूराका ही पूरा बना हुआ हूं। यह निकलता हुआ पूरापन इसी पूर्णमें विलीन हो जाता है और नया पूर्ण उत्पन्न हो जाता है, और इन दोनोंका स्रोतभूत यह मैं पूर्णका पूर्ण रहा करता हूं।

पूर्णमें क्षोभके अनवसरकी यथार्थता—इस पूर्णमें कोई अधूरापन नहीं है, कोई कमी नहीं है, कुछ नहीं अटकी किसी भी बातसे व्यर्थ लोग सोच-सोचकर। दुःखी होते रहते हैं, पर अणु मात्रसे भी इस आत्माकी अटक नहीं है। यह आत्मा अपने प्रदेशोंमें परिपूर्ण है, लेकिन एक अनादि वासना है, निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है, अपनी भूल है। यह जीव इन्द्रियोंके द्वारा इन स्पर्श आदिक विषयोंको भोगता है तो जो भोगा जाता है वह भी पुद्गल है और जिन इन्द्रियोंके द्वारा भोगा जाता है वे इन्द्रियां भी पुद्गल हैं। ये सब काय कहलाते हैं। जीवके योग द्वारा संचित परमाणुवोंके ढेरको काय कहते हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायु-काय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय अथवा औदारिककाय, वैक्रियककाय आदि ये समस्त काय पुद्गल हैं। आत्माका स्वरूप तो कायरहित है, अशरीरी है। अशरीर परमात्मदेवकी परम्परासे प्रति-पादित ये समस्त काय पुद्गल हैं।

मनकी पौद्गलिकता—यह मन जिसका दूसरा नाम है अंतःकरण, वह भी पुद्गल है। ये ५ इन्द्रियां बाह्यकरण कहलाती हैं, ये बाहर दिखती हैं, ये बाह्यज्ञानके साधन हैं और अंतरङ्गमें जो द्रव्यमनकी रचना है वह अन्तःकरण है। अंतःकरणकी रचना यह भी पौद्गलिक है। आत्मा तो इस मनसे रहित है, मनसे उत्पन्न हुए विकल्पजालसे भी रहित है, ऐसे इस शुद्ध जीवास्तिकायसे विपरीत जो एक मनकी रचना है, यह रचना भी पौद्गलिक है। ये ८ प्रकारके कर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय आत्मपदार्थसे प्रतिकूल हैं। यह आत्मा तो चेतन है, जिसके स्वरूपमें कर्मोंका प्रवेश नहीं है, ऐसे इस चिद्ब्रह्मसे विपरीत प्रतिपक्ष ये ज्ञानावरण आदिक ८ प्रकारके कर्म हैं, ये कर्म भी पौद्गलिक हैं। यह सब जीवसम्बंधित बातोंको बताया गया है। इसके अतिरिक्त जो अन्य पदार्थ पड़े हुए हैं मूर्त पदार्थ वे सबके सब पौद्गलिक हैं। यह आत्मा अमूर्त स्वभाव वाला है। उससे विपरीत जो कुछ भी ये सब मूर्त पाये जाते हैं वे सब पौद्गलिक हैं। यह सब इस-लिए बताया जा रहा है कि यह श्रद्धा बनी रहे कि यह मैं नहीं हूं, ये पौद्गलिक ठाठ हैं, कोई स्कंध संख्यात परमाणुवोंका पिण्ड है, कोई असंख्यात परमाणुवोंका पिण्ड है, कोई अनन्त पर-माणुवोंका पिण्ड है। अनन्त परमाणुओंका संचयरूप जो हम आप सब देखते हैं इन्हें तो पौद्-गलिक जानें ही, और भी संख्याताणु तक स्कंध हैं।

कर्मकी पौद्गलिकता व बन्धनविधि—सूक्ष्म स्कन्ध कार्माणवर्गणायें हैं जिनके कर्म व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणमनसे कर्म बनते हैं। साधारण तौरसे यह प्रसिद्ध है कि जीवके रागद्वेष भावोंका निमित्त पाकर नवीन द्रव्यकर्म बनते हैं और द्रव्यकर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीवमें रागद्वेष होते हैं। ये बातें बहुत-बहुत ग्रन्थोंमें कही गई हैं और यथार्थ भी हैं, किन्तु इनमें एक मर्म जरूर हुआ है। यह तो स्पष्ट है कि द्रव्यकर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीवमें रागद्वेष भाव उत्पन्न होते हैं। अब जो कर्मबन्धन है उस कर्मबन्धनका निमित्त क्या है? कहा यह गया कि जो नवीन कर्म बँधेंगे उनमें निमित्त हैं रागद्वेष मोहभाव। इसका विश्लेषण किया जाय तो बात वहाँ यह है कि नवीन कर्मोंके निमित्त उदयमें आये हुए द्रव्यकर्म हैं अर्थात् उदयमें आये हुए द्रव्यकर्मोंका निमित्त पाकर नवीन कर्म बँध जाते हैं। नवीन कर्मोंके बन्धनका निमित्त है उदयागत द्रव्यकर्म, न कि रागद्वेष मोहभाव। फिर इन रागद्वेष मोहभावोंको नवीन कर्मोंके बन्धनका निमित्त क्यों कहा गया है? अनेक ग्रन्थोंमें यों कहा गया है कि नवीन कर्म बँधते तो हैं उदयागत द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर, पर उदयगत द्रव्यकर्ममें नवीन कर्मबंधनका निमित्तपना आया। यह निमित्तपना आता है रागद्वेष मोह भावोंका निमित्त पाकर अर्थात् कर्मोंके बन्धन का निमित्त है उदयमें आये हुए द्रव्यकर्म। और उदयमें आये हुए कर्मोंमें बन्धनका निमित्तपना आ जाय इस कार्यका निमित्त है रागद्वेष मोहभाव।

कर्मबन्धनविधिपर एक लोकदृष्टान्त—जैसे एक मोटा दृष्टान्त लो। कोई आदमी अपने घरके कुत्तेके साथ घूम रहा है। रास्तेमें सामनेसे कोई इसका अनिष्ट पुरुष मिला तो उस मालिकने उस कुत्तेको सैन दी छू छू। कुत्तेने उस पुरुषपर आक्रमण किया तो आप यह बतलावो कि उस पुरुषपर आक्रमण किसने किया? यों भी तो आप सीधा कह सकते कि इस पुरुषने आक्रमण किया। कुछ गलत बात है क्या? लेकिन इसका विश्लेषण करें तो बात यह हुई कि आक्रमण तो किया कुत्तेने, और आक्रमण करनेका जो साहस आया उसका निमित्त हुआ मालिक। ऐसे ही नवीन कर्मबन्धनका कारण तो हुए उदयमें आये हुए द्रव्यकर्म, और उदयमें आये हुए द्रव्यकर्मोंमें नवीन कर्म बन्धनका निमित्ततत्त्व आ जाय उसका निमित्त है रागद्वेष मोह। तभी तो कभी ऐसी प्रसिद्धि आयी है कि उदयागत द्रव्यकर्म तो बँध गए, किन्तु उपयोग किसी शुद्ध द्रव्यकी ओर लगा है, शुद्ध आत्मतत्त्वकी ओर लगा है तो बहुत कुछ अंशों में चूंकि उसमें निमित्तपनेका निमित्त नहीं मिला, सो नवीन कर्मबन्धनमें शिथिलता आ जाती है। ये कार्माणवर्गणायें पौद्गलिक हैं।

पुद्गलविस्तार—जो पदार्थ दृष्टिगत होते, नहीं दृष्टिगत होते, वे सभी अपनी नवीन पर्यायोंकी उत्पत्तिके कारणभूत हैं, ऐसी अनन्तानन्त अणु वर्गणायें, अनन्त अणु वर्गणायें, असंख्यात अणु वर्गणायें, संख्यात अणु वर्गणायें और भी उनके विभाग करते जायें तो सब २३ प्रकारकी वर्गणायें कही हैं। उनमेंसे जीवके ग्राह्य ५ प्रकारकी वर्गणायें हैं—आहारवर्गणा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाषावर्गणा, तैजसवर्गणा, मनोवर्गणा और कार्माणवर्गणा। अब यह निरख लीजिए कि यह मोही जीव पुद्गल-पुद्गलमें ही रमण करता हुआ, भोगता हुआ चला आ रहा है। इन पौद्गलिक पदार्थोंमें ही यह जीव निरन्तर विकल्प बनाया करता है। इसने सब पौद्गलिक ठाठों को ही सर्वस्व मान लिया है। रहना यहाँ कुछ भी नहीं है, सब कुछ छूटना ही है, पर उनका विकल्प नहीं छोड़ा जा पाता। उनको ही लोगोंने अपना सर्वस्व मान डाला है। ऐसी बेढंगी रफ्तारसे ही चलते रहे तो उसका परिणाम क्या होगा, इसपर कुछ दृष्टि नहीं करते। मिलेगा क्या ?

व्यर्थका राग—एकका भाई गुजर गया, बी. ए. पास था। सर्विस खूब की थी और अन्तमें बड़ी उम्र पाकर गुजर गया। किसीने उस मरने वालेके भाईसे पूछा—कहो तुम्हारे भाई क्या कर गए ? पूछते हैं ना लोग मरते समय कि क्या त्याग किया, क्या दान दिया, क्या कर गये ? यों ही किसीने उस मरने वालेके भाईसे भी पूछा कि तुम्हारा भाई क्या कर गया ? तो वह कहता है—"क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए। बी. ए. किया, नौकर हुए, पेन्शन मिली और मर गये ॥" यही हाल सबका है। व्यापारियोंने व्यापार किया, धन कमाया, भोगा और अन्तमें गुजर गये। क्या रहा हाथ ? अरे हाथ तो वह रहेगा जितनी ज्ञानसाधना कर लो, रत्नत्रयकी सिद्धि कर लो, अपने आपमें अपने आपको सम्हाल लो, अपनी उपासना बना लो तो कुछ हाथ भी रहेगा, इन बाह्यपदार्थोंमें यहाँ कुछ भी हाथ न रहेगा, इनके कारण दुर्गति और सहनी पड़ेगी।

पुद्गलके विषयमें मोहीका प्रवर्तन—यहाँ पुद्गल-द्रव्यास्तिकाय यह वर्णन चल रहा था। इस गाथामें पुद्गलद्रव्यका व्याख्यान समाप्त हो रहा है। इस वर्णनसे हमें शिक्षा यह लेनी है कि हमने इन पुद्गलोंमें ही उपयोग लगा-लगाकर अपने आपको बरबाद किया है, हमने अपना उपयोग अपने ज्ञानस्वरूपमें नहीं टिकाया, अन्तःप्रकाशका उपयोग करनेका आनंद तो लूटा तो यह बाहरी कल्पित व्यर्थका मौज ही लेनेका यत्न किया और इसी कारण अब तक इस जगतमें परेशान रहे, शरीर उत्पन्न हुआ तो माना कि मैं उत्पन्न हुआ हूं। शरीर नष्ट हुआ, शरीरका वियोग हुआ तो माना कि अब मैं नष्ट हो रहा हूं, शरीरको पुष्ट देखा तो अपने को पुष्ट माना, शरीरको कमजोर देखा तो अपनेको कमजोर माना, धन वैभव जुड़ गया तो अपनेको सुखी माना, धन वैभव न रहा तो अपनेको रंक माना। कुछ यश, बला, प्रतिष्ठा बन गई तो उससे समझ लिया कि मेरा बड़ा प्रभाव है, यों नाना कल्पनाएँ इस जीवने बनायीं, क्योंकि जब स्वयंका आनन्द न मिला और आनन्दके लिए ललचाता रहा, तो फिर यह इनमें रम जाया करता है।

निजकी रम्यताके बोध बिना पररमणके भावका क्लेश—किसी बच्चेके साथमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खेलते हुए दूसरे बच्चेके हाथमें खिलौना हो और माँ की गोदमें चढ़ा हुआ बच्चा उस खिलौने को देखकर रोने लगे तो माँ उसे पीटती है, पर बच्चेका रोना बंद नहीं होता। उसका रोना तब बंद होगा जब उसे उसका खिलौना मिल जाय। तब माँ क्या यत्न करती है कि कोई खिलौना किसीसे लाकर अथवा मोल लेकर उसका खिलौना बनाकर उसे दे देती है तो उस बच्चेका रोना बन्द हो जाता है। ऐसे ही ये संसारी प्राणी इन परवस्तुवोंके खिलौनोंको निरख-निरखकर रोते हैं, दुःखी होते हैं, मलिन हृदय बनाते हैं। इनका यह रोना कब मिटेगा? जब इनको अपना खिलौना मिले। अपना खिलौना है अपने स्वरूपका दर्शन। निजस्वरूपका दर्शन मिले तो इसकी ये सब बाधायें दूर होंगी। यत्न करो इस ही का कि जो मेरा स्वरूप है, मेरा ही खिलौना है, सदा रहने वाला है, मुझसे अभिन्न है। केवल भाव स्वरूप है, जिसमें पराधीनता नहीं है, स्वयं होनेके कारण सुगम है, ऐसे स्वाधीन निजस्वरूप रूप खिलौनेमें अपने उपयोगको रमायें।

मनको शुभकार्यमें प्रवर्तानेका अनुरोध—यह मन बड़ा चंचल है। इसे शुभ कामोंमें लगायें तो यह ठीक रहेगा और शुभ काम इसे न मिलेंगे तो यह बिगड़ जायगा। एक राजाने देवता सिद्ध किया तो देवता आया, बोला—राजन्! हम तुम्हें सिद्ध हो गए हैं, तुम्हें जो कुछ काम करवाना हो सो बतावो। हम उस कामको पूरा करेंगे और अगर काम न बतावोगे तो हम तुम्हें खा लेंगे। राजाने कहा अच्छा सड़क बना दो, सड़क बना दिया। राजन् काम बतावो। तालाब बना दो। बना दिया तालाब। राजन् काम बतावो महल बना दो। बना दिया महल। राजन् काम बतावो। यों राजा परेशान हो गया। सोचा कि मैं इसे क्या सोच सोचकर बताता रहूंगा और यदि न बताते रहे काम तो यह मुझे खा डालेगा। सो राजाको एक उपाय सूझा। कहा अच्छा तुम एक ५० हाथका लोहेका डंडा गाड़ दो। गाड़ दिया। राजन् काम बतावो। अच्छा इसके एक छोरमें एक लोहेकी बड़ी जंजीर बाँध दो। बाँध दिया। राजन् काम बतावो। अच्छा जंजीरका एक छोर अपने गलेमें फाँस लो। फाँस लिया। राजन् काम बताबो। अच्छा जब तक हम मना न करें तब तक तुम इसमें बन्दरकी तरह चढ़ो, उतरो। अब भला बतलाबो इस कामका कोई अन्त भी आयगा क्या? अंतमें वह देव परेशान होकर राजासे क्षमा मांगने लगा। राजन् क्षमा करो, अब हमें काम न चाहिए। अब तुम किसी भी समय हमारा स्मरण कर लेना, हम फौरन आकर तुम्हारा काम कर जायेंगे। तो ऐसे ही यह मन चंचल है, इसे शुभ काम न मिलेंगे तो अशुभ विकल्प, गंदे विचार, कुबुद्धि उत्पन्न होती रहेगी। तो हम आप सबका कर्तव्य यह है कि अशुभ कामोंकी प्रवृत्तिसे दूर हों। यदि ढंगसे बात समझ लें तो हमारा हित होगा और मनकी स्वच्छन्दता और कुटेबसे इन पुद्गलोंकी प्रतीति बनाये रहेंगे तो हमारा अहित ही होगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादिपदेसं ।।८३।।

धर्मद्रव्यकी उदासीन कारणता—मुझ जीवद्रव्यके सिवाय जितने भी अन्य पदार्थ हैं वे सब अजीव कहलाते हैं। उन अजीवोंमें से पुद्गलद्रव्यका वर्णन तो किया जा चुका है। इसके बाद धर्मद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान कर रहे हैं। धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो चलते हुए जीव पुद्गलको चलानेमें सहायक बने। जैसे चलती हुई मछलीको चलानेमें जल सहायक होता है। जल कहीं जबरदस्ती मछलीको नहीं चलाता है, किन्तु मछली चलना चाहे, वह अपना उद्यम करे तो देख लो जल सहायक है या नहीं। जलके सिवाय अन्य जगह स्थानपर तो मछली चल नहीं सकती। ऐसे ही इस लोकाकाशमें धर्मद्रव्य है। वह अति सूक्ष्म है वह हम लोगोंके चलनेमें एक साधारण आश्रय है, निमित्त कारण है, उस धर्मद्रव्यका यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

सूक्ष्म पदार्थकी मार्गणा—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य तथा कालद्रव्य—इन तीनके सम्बन्धमें किसी भी दर्शनमें प्रकाश नहीं मिला। आकाश सब मानते हैं उस पुद्गलको भी मैटरके रूपमें भौतिक रूपमें माना ही है, जीवको भी स्वीकार करते हैं, कालद्रव्यको भी नहीं मानते, किन्तु कालकी बातको तो मानते हैं, समय, घड़ी, घंटा वगैरा। मूर्त अमूर्त समस्त द्रव्योंका प्रकाश जैनदर्शनमें किया गया है। यह धर्मास्तिकाय रूप, रस, गंध, स्पर्श, वर्ण रहित है और इस लोकमें अवगाढ़ रूपसे भरा हुआ है, असंख्यातप्रदेशी है। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, जिनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श इत्यादि गुण न पाये जायें वे सब अमूर्त हैं। इस आकाशमें आकाशकी ही तरह अमूर्त एक ऐसा विलक्षण द्रव्य पड़ा हुआ है कि जिसके रहनेसे हम आप चलना चाहें तो चल सकते हैं।

विभिन्न कार्यमें परनिमित्तका सन्निधान—जितने भी विभिन्न कार्य होते हैं उन विभिन्न कार्योंका कारण विभिन्न होता है। जीव और पुद्गल गमन किया करते हैं। यह गमनरूप क्रिया विभिन्न है तो इसका भी कोई शरण है। इसके सम्बन्धमें कुछ वैज्ञानिक लोग भी ऐसा अन्दाज करते हैं कि आकाशमें कोई ईथर है इस तरहका सूक्ष्म जिसका आधार पाकर चीजें चलती हैं। अनुमान करते हैं, किन्तु उनके अनुमानमें जो कुछ तत्त्व आता है उससे भी अतिसूक्ष्म धर्मास्तिकाय नामक पदार्थ है और वह रूप, रस, गंध, स्पर्श इत्यादिसे रहित है, इसी कारण शब्दरहित भी है, सारे लोकमें वह व्यापकर रहता है, लोकमें अवगाढ़ है और उसके प्रदेश पृथक् सिद्ध नहीं हैं। जैसे कि मटकेमें चने भरे हों तो वे पृथक्-पृथक् हैं, इस तरह धर्मद्रव्यमें प्रदेश पृथक् नहीं हैं। एक धर्मद्रव्य है, स्वभावसे ही महान है, अमिट है, प्रथुल है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मद्रव्यकी अखण्ड एकरूपता—यद्यपि वह अखण्ड है, निश्चयसे एकप्रदेशी है अर्थात् अखण्ड है तो भी व्यवहारनयसे उसमें असंख्य प्रदेश हैं। जैसे घड़ेमें पानी भरा रहता है वह अन्तररहित है, तिलमें तेल भरा रहता है वह अन्तररहित है अथवा सिद्धलोकमें सिद्धप्रभु बिराजे रहते हैं वे अन्तररहित हैं। वे सिद्धप्रभु निर्विकार स्वसम्वेदन ज्ञानमें परिणम रहे हैं। उन जीवप्रदेशोंमें उनके परम आनन्द सुधा रसका स्वाद रहता है अथवा सिद्धक्षेत्रमें जैसा शुद्ध सघन बिराज रहे हैं, अमूर्त हैं इसी तरह इस लोकाकाशमें धर्मद्रव्य व्याप रहा है परस्पर एक प्रदेश और दूसरे प्रदेशके बीचमें व्यवधान नहीं है। जैसे नगरमें मनुष्य बैठे हैं ये यहाँ हैं, वे वहाँ हैं, बीचमें साफ मैदान है। इस तरह धर्मद्रव्यके प्रदेश नहीं हैं और वे सघन बिराजे हैं, जैसे अभव्य जीवमें मिथ्यात्व रागादिक पूरेमें फैले हुए हैं अथवा जैसे आकाश पूरा विस्तृत है, स्वभावसे ही फैला है, इसी तरह यह धर्मद्रव्य इस आकाशमें लोकाकाशमें स्वभावसे ही है।

वस्तुका स्वातन्त्र्य—देखिये वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे निरखें तो कोई पदार्थ किसी पदार्थ का नहीं है। जैसे यहाँ कहनेका रिवाज है कि आकाशमें जीव है, पुद्गल हैं, ठहरे हुए हैं तो यों कहा गया है कि चूँकि आकाश निष्क्रिय है और विशाल है, उसके कुछ हिस्सेमें यह भावात्मक पदार्थ है। इस कारण कहते हैं कि आकाशमें जीवादिक ठहरे हैं, किन्तु स्वरूपसे देखा जाय तो जैसे आकाश अपने अस्तित्वको लिए हुए अपने आपमें बिराजा है इसी प्रकार प्रत्येक जीव अपने स्वरूपको लिए हुए अपने ही प्रदेशमें बिराजा है। किसीके प्रदेशमें किसी दूसरे द्रव्यके प्रदेश स्वरूपपद्धतिसे प्रवेश नहीं करते हैं और इस दृष्टिसे यह नहीं कहा जा सकता कि आकाशमें जीव हैं। आकाशमें आकाश है, जीवमें जीव है, शरीरमें शरीर है। यह एक निश्चयदृष्टिकी बात है। जैसे स्कूलमें किसी बच्चेकी कोई किताब गुम जाय और कोई विद्यार्थी उसे पा ले। तो बादमें वह उठकर पूछता है कहो यह किताब किसकी है ? तो कोई मसखरा विद्यार्थी बोल देता है कि यह किताब कागज की है। अरे ठीक ही तो कहा ना। इसी प्रकार निश्चयदृष्टिका अंदाज करिये। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यसे सम्बन्ध नहीं बताया जा सकता निश्चय दृष्टिसे। इसी प्रकार एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यका आधार नहीं बताया जा सकता है निश्चयदृष्टिसे। जीवमें जीव है, आकाशमें आकाश है, धर्मद्रव्यमें धर्मद्रव्य है। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने प्रदेशमें बस रहा है। कोई कहीं अन्यत्र नहीं बसता। यह वस्तु स्वातंत्र्यका प्रतिपादन है।

वस्तुस्वातन्त्र्यके श्रद्धानमें सिद्धि—जो भी जीव निर्मोह होकर सिद्ध हुए हैं उन सब जीवोंने यही दृष्टि अपनाई थी। यों ही इन्होंने सब पदार्थोंको देखा था। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए है, किसी एक पदार्थका किसी दूसरे पदार्थमें प्रवेश नहीं है। देखिये यह जगत अशरण है, यहां अपना स्थान समझना, अपना घर समझना कोरा अज्ञान है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो लोग इस अज्ञानमें डूबे रहते हैं उनका संसार लम्बा होता रहता है, जन्ममरणकी परम्परा बढ़ती रहती है। क्या है यह परिग्रह ? किसी भी चीजमें ममता करनेसे तो न जाने कितने जन्ममरण करने पड़ेंगे ? ज्ञानमें इतनी बात तो आना ही चाहिए कि मेरा मात्र केवल मैं हूं, मेरा मैं मुझमें हूं अन्यत्र नहीं। मेरा जो कुछ भी परिणमन होता है, क्रिया होती है वह सब मेरेमें होती है, किसी दूसरे पदार्थके लिए नहीं होती। मैं जो कुछ करता हूं, अन्तरङ्गमें क्रिया करता हूं, भावात्मक परिणमन करता हूं। निर्दोष निराकुल जो परिणमन होते हैं वे शुद्ध परिणमन कहलाते हैं और रागद्वेषोंसे मलिन जो परिणमन होते हैं उन्हें अशुद्ध परिणमन कहते हैं। कुछ भी मैं करूँ अपने ही साधनसे, अपनी ही शक्तिसे, अपने ही परिणमनसे मैं किया करता हूं। किसीका कोई दूसरा साथी है नहीं। मेरा जब जैसा उदय आयगा तब तैसा मुझे ही भुगतना पड़ेगा, दूसरा कोई किसी भी काममें साथी नहीं है। ऐसे इस असार अकारण संसारमें हम मौजमें मस्त हो जायें और मनकी स्वच्छंदता करें और मनके अनुकूल ही अपनी हठ बनाया करें तो उससे इस जीवको सिद्धि नहीं है, जगजालमें भ्रमण करना ही उसका फल है।

द्रव्यशुद्धि व पर्यायशुद्धि—देखो यह धर्मास्तिकाय द्रव्य अचेतन है, ठीक है, फिर भी इसके स्वरूपको तो देखो—यह त्रिकाल शुद्ध रहता है, प्रकट शुद्ध रहता है। सबसे न्यारा अपने स्वरूपमात्र रहना, यह तो कहलाती है द्रव्यशुद्धि और परकी अपेक्षा बिना अपने आपके सत्त्वके कारण पर निमित्त किए बिना जो स्वतः सहज परिणमन होता है वह है पर्यायशुद्धि। धर्मद्रव्यमें द्रव्यशुद्धि भी है, पर्यायशुद्धि भी है। सिद्ध भगवानमें द्रव्यशुद्धि भी है, पर्यायशुद्धि भी है। अन्य सब पदार्थोंसे न्यारा स्वरूप रहना और अपने ही स्वरूपमें तन्मय रहना द्रव्यशुद्धि है और ऐसे ही बाह्यशुद्धि, पूर्णविकास होना पर्यायशुद्धि है। हम आप संसारी जीवोंमें द्रव्यशुद्धि तो वैसी ही है जैसी कि सिद्ध भगवन्तोंमें है अथवा समस्त अनन्त पदार्थोंमें है। दूसरे पदार्थों से न्यारा रहना और अपनी ही सत्ताके कारण सत्ता बनी रहना यही है द्रव्यशुद्धि, और इस आत्माका सहज ऐसा ही प्रकाश होनेपर कर्म उपाधिका निमित्त किए बिना ऐसा ही विकास होना यह है पर्यायशुद्धि।

शुद्धिके उपायकी जिज्ञासा—जरा एक बात सामने रखिये। किसीको सिद्ध होना हो तो क्या अशुद्धका आश्रय करके, ध्यान करके सिद्ध हो सकते हैं ? चित्त कहेगा कि नहीं। सिद्धका आश्रय लेनेसे, सिद्धका ध्यान करनेसे सिद्ध बना जा सकता है पर अशुद्धके सहारेसे अशुद्धके ध्यानसे सिद्ध नहीं बना जा सकता। तब एक बात और सामने आ गयी। हमें बनना है शुद्ध तो हम किस शुद्धका सहारा लें ? अपना लें। वाह हम तो अशुद्ध हैं और हमें बनना है शुद्ध तो जब हम शुद्ध हो नहीं हैं तो इस अशुद्धका सहारा लेनेसे हम सिद्ध कैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन सकेंगे ? अच्छा तो अरहंत भगवान सिद्ध भगवान ये तो सिद्ध हैं ना, हम इनका सहारा लें तो सिद्ध बन जायेंगे ? ठीक है। कुछ सीमा तक तो यह बात ठीक बैठती है। जहाँ विषय कषायोंकी अधिक गंदगी लदी हुई है उससे निवृत्त होनेके लिए अरहंत भगवान और सिद्ध भगवानका ध्यान हितकारी है, लेकिन एक बात तो बतावो। जो आत्माकी आत्मामें सिद्धता होती है वह शुद्धि किसी परपदार्थका आश्रय लेनेसे क्या बन सकती है ? अरहंत सिद्ध भिन्न द्रव्य हैं या नहीं ? हमसे तो भिन्न हैं ना ? उनका ज्ञान उनमें है, उनका आनन्द उनमें है, वे जो कुछ परिणमते हैं अपने आपमें परिणमते हैं। दूसरेका सहारा क्या काम करेगा ? क्या वह मुझमें आकर मुझमें शुद्धरूप परिणमन करेंगे ? नहीं। वे अपने स्वरूपसे चिगते ही नहीं हैं। वे मुझमें आ ही नहीं सकते फिर होता क्या है ?

शुद्धिके उपायका समाधान—भगवानका हम सहारा नहीं लिया करते, भगवानको तो ज्ञान और ध्यानका विषय बनाते हैं, सहारा लेते हैं, परिणमन करते हैं, अपने आपके आधार में उस उस प्रकारका उपयोग बनाकर परिणमन करते हैं। तो निश्चयसे हमने प्रभुभक्तिमें किसका सहारा लिया ? प्रभुका, किन्तु प्रभुके सम्बन्धमें जिस प्रकारका विचार बनता है, जो भावना उत्पन्न होती है उस प्रकारके अपने परिणमनका सहारा लेते हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका आश्रय कर ही नहीं सकता। तो यहाँ हमने अपना आश्रय लिया है। फिर अब वही प्रश्न उठ खड़ा होता है। हम तो अशुद्ध हैं और अशुद्धका सहारा लेनेसे शुद्धि कैसे प्रकट हो ? भगवान सिद्ध हैं किन्तु वे भिन्न पदार्थ हैं, कोई पदार्थ किसी भिन्न पदार्थमें आश्रय नहीं लेता, समाता नहीं, तब हम कैसे सिद्ध हों ? इसका समाधान यही मिलेगा कि देखो अभी हमारी पर्याय शुद्ध तो नहीं है किन्तु द्रव्य तो शुद्ध है। प्रत्येक पदार्थमें द्रव्य शुद्ध सनातन रहता है। तो द्रव्य शुद्ध है ना। मैं द्रव्यतः शुद्ध हूं, उपयोगसे सबसे न्यारा निज सहज स्वरूपमात्र अपने अंतस्तत्वका आश्रय लीजिए। उस अंतस्तत्त्वके ध्यानके प्रसादसे पर्याय में विशुद्धि जगने लगेगी। तो बाह्यमें सिद्धका ध्यान करनेसे तो अपने आपमें प्रभाव बनता है शुद्ध दृष्ट होनेका, पर निश्चयसे अपने आपमें ही विराजे हुए इस शुद्ध सहजस्वभावका आलम्बन लेनेसे निर्विकारता प्रकट होती है, इस कारण सिद्धपदार्थका ध्यान करना हमारी उन्नतिके लिए बहुत आवश्यक बात है।

अगुरुलहुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।
गदिफिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥८४॥

अगुरुलघुक गुणों द्वारा षड्गुण हानिवृद्धि—यह धर्मद्रव्य अपनेमें ही साधारण गुण रूपसे जो अगुरुलघुत्व गुण हैं उन गुणोंसे परिणत होनेमें प्रतिसमय षड्गुणहानि वृद्धियोंसे, अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंसे जो अगुरुलघुत्व गुण परिणत हैं उनके कारण यह निरन्तर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पाद व्यय करता रहता है। फिर भी यह धर्मद्रव्य नित्य है। देखिये यह सीधी अंगुली है इसे मान लो टेढ़ी कर दिया तो आपके ज्ञानमें अंगुली कितनी टेढ़ी होने पर यह समझ बैठी कि यह अंगुली टेढ़ी हुई है ? जितना कमसे कम टेढ़ी आ जाने पर आपकी समझमें आया कि यह अंगुली टेढ़ी हुई है, उसके भीतर भी कितनी ही टेढ़ी होनेकी डिग्रियाँ ऐसी पड़ी हैं जो आपकी समझमें नहीं आ सकतीं। एक बालक एक वर्षमें ६ अंगुल बढ़ गया तो इसे आप कब समझ पाये कि यह बालक बढ़ गया ? आप कहेंगे कि कुछ कुछ तो ३ महीनेमें ही समझमें आ जाता है। यदि तीन महीनेमें बढ़ा हुआ वह मालूम पड़ा तो क्या एक महीनेमें वह कुछ भी न बढ़ा था ? और एक महीनेमें बढ़ा था तो क्या एक दिनमें न बढ़ा था ? यों ही एक घंटेमें, एक सेकेण्डमें क्या वह कुछ भी न बढ़ा था ? अरे वह प्रति समय परिणम रहा है, बढ़ रहा है, वृद्धिकी ओर चल रहा है। यह सूक्ष्म परिणमन जो षट्स्थानपतित वृद्धि हानि की बात है। यह हम आपके ध्यानमें नहीं आता और इसके बारेमें ऋषियोंने यह बताया है कि यह केवल ज्ञानगम्य है। हाँ धर्मद्रव्य है, इस लोकाकाशमें सर्वत्र भरा हुआ है, एक पदार्थ है और वह निरन्तर अनन्तगुणा अनन्तभाग बढ़ात है, घटात है, फिर भी यह निरन्तर वैसा ही चलता रहता है।

षड्गुणहानिवृद्धिके अनुमानमें—भैया ! सर्व प्रथम तो धर्मद्रव्य ही स्पष्ट समझमें सुगमतया नहीं आ रहा, फिर उसकी षड्गुणहानिवृद्धि यह तो बहुत ही सूक्ष्म बात है। देखो किसी बालकने एक अक्षरका ज्ञान किया, अब वह दूसरे अक्षरका ज्ञान करता है तो पहिलेके ज्ञानसे इस बालकका कितना ज्ञान बढ़ गया ? लोग यह कहेंगे कि एक अक्षरका ज्ञान बढ़ गया। उस एक अक्षरके बढ़नेमें क्या आधा अक्षर नहीं बढ़ा, क्या पाव अक्षर नहीं बढ़ा ? और ऐसे ही हिस्से करते जावो तो उसमें अनन्त डिग्रियाँ हैं, अनगिनती डिग्रियाँ हैं और कुछ तो ज्ञानकी ऐसी डिग्रियाँ होती हैं कि क्रम भंग करके हो जाती हैं। जैसे इस मिनटमें हजार डिग्रीका ज्ञान है, अगले ही क्षणमें उसके ३ हजार डिग्रीका ज्ञान हो गया तो दो हजार डिग्रियाँ इसमें बढ़ी तो हैं, मगर वृद्धिके क्रममें नहीं ? कुछ ऐसी भी वृद्धियां होती हैं। यों इस धर्मद्रव्यमें सूक्ष्मरूपमें ऐसे अनन्त अगुरुलघुवोंका परिणमन होता है।

धर्मद्रव्यकी नित्यता व गतिमें उदासीनकारणता—धर्मद्रव्य नित्य है और गतिक्रिया में लगे हुए जीव पुद्गलके गमन कार्यमें कारणभूत हैं। जैसे हम आप सिद्ध भगवानका ध्यान करते हैं तो उस ध्यानके प्रतापसे हम इस मोक्षमार्गके गमनमें बढ़ते हैं ना, तो सिद्धगतिके बहिरङ्ग सहकारी कारण, निमित्त कारण सिद्ध भगवान हुए। किन्तु कोई भी सिद्ध क्या इस प्रकारके परिणमन करनेका प्रयत्न भी कर रहा है ? कोई भी नहीं कर रहा है। सिद्ध भगवान के गुणोंमें अनुराग करने वाले सिद्धगतिके वे सहकारी कारण हो जाते हैं निमित्तमात्र, इसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार यह धर्मद्रव्य भी स्वभावसे उदासीन है। यहाँ धर्मद्रव्य जीव व पुद्गलको जबरदस्ती चलाता नहीं है, फिर भी गति क्रियामें परिणमते हुए जीव पुद्गलकी गतिमें सहकारी कारण हो जाया करता है निमित्तमात्र। और यह जीव पुद्गलकी गति क्रियाका तो कारण है पर स्वयं अकार्य है। जैसे सिद्ध भगवान तो शुद्ध अस्तित्वसे निष्पन्न होनेके कारण वे अकार्य हैं, किसी अन्यके द्वारा किये गये नहीं हैं, इसी प्रकार यह धर्मद्रव्य भी अपने अस्तित्वसे बना हुआ है अत: किसी समय इस धर्मद्रव्यको किया गया नहीं है। यह सनातन अपनी ही सत्तासे शुद्ध धर्मद्रव्य है, जिसका निमित्त पाकर हम आप गति क्रियामें परिणत हुआ करते हैं।

शुद्ध द्रव्यकी चर्चाका लाभ—यद्यपि यह धर्मद्रव्य सूक्ष्म है फिर भी इस ज्ञानसे हम ऐसे पदार्थोंके ज्ञानमें लाये हुए ज्ञानके प्रयोगसे हमारेमें विषय कषाय उत्पन्न नहीं होते। धर्मद्रव्यका वर्णन करके किसी विषयके भोगमें मदद मिलती है क्या? एक शुद्धद्रव्य है। हमारे रागादिक भावोंके लिए अनाश्रय है। कोई सोचता हो कि फालतू चर्चासे क्या लाभ है तो यह फालतू बात नहीं है। द्रव्यके स्वरूपकी चर्चामें उपयोग जाय तो यहाँ विषय कषायोंका आक्रमण तो बंद हो गया ना, यह लाभ की बात है। इस प्रकार पुद्गलद्रव्यके वर्णनके बाद यह धर्मद्रव्यका वर्णन किया है। अब आगे धर्मद्रव्यको विशेष बतानेके लिए एक दृष्टान्त देंगे।

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥८५॥

धर्मद्रव्यकी गतिहेतुतापर दृष्टान्त—इस गाथामें धर्मद्रव्य जीवद्रव्य व पुद्गलद्रव्यकी गतिका कारण होता है, इस सम्बंधमें दृष्टान्त बताया गया है। जैसे जल स्वयं तो नहीं चलता और जबरदस्ती किसी दूसरी मछलीको चलाता भी नहीं है, किन्तु स्वयमेव चलने वाली मछलियोंको यह जल उदासीन रूपसे अविनाभूत सहायक कारण मात्र होता है। यहाँ दो शब्द दिए गए हैं उदासीन और अविनाभूत। मछलीके चलनेमें जल होना ही चाहिए, यों तो अविनाभूत है और होकर भी जल अत्यन्त उदासीन है, वह न खुद क्रिया करता है और न मछलीको क्रिया कराता है। इस ही प्रकार धर्मद्रव्य भी स्वयं नहीं चलता धर्मद्रव्य निष्क्रिय है और दूसरोंको भी नहीं चलाता है किन्तु स्वयं चलने वाला जीव पुद्गल जब स्वयं चले तब यह धर्मद्रव्य उदासीन अविनाभूत सहायक कारणमात्र उनके गमनमें होता है।

धर्मद्रव्यकी गतिहेतुतापर आध्यात्मिक दृष्टान्त—धर्मद्रव्यकी गतिकारणतामें अन्य दृष्टान्त लो। जैसे रागादिक दोषोंसे रहित, शुद्ध आत्मानुभवसे सहित निश्चय धर्म सिद्ध गतिका उपादान कारण होता हैं अर्थात् भव्य जीवोंमें जब निज शुद्ध चैतन्यस्वरूपमात्र आत्मतत्त्वकी अनुभूति होती है तो इस अनुभवमें हुआ जो निश्चय धर्म है वह सिद्धगतिका खास कारण है। तब वहाँ पुण्यरूप धर्म सहकारी कारण होता है, पर हो पुण्य ऐसा जो निदानरहित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणामों से उत्पन्न किया गया है। तीर्थंकर प्रकृति, उत्तम संहनन आदि विशिष्ट पुण्यरूप धर्म भी सहकारी कारण होता है। यहाँ यद्यपि जीव पुद्गलके विषयके परिणमनमें अपना ही अपना उपादान कारण है फिर भी वहां धर्मास्तिकाय भी सहकारी कारण होता है।

आध्यात्मिक दृष्टान्तका विवरण—अभी जो दृष्टान्त दिया है उसका तात्पर्य यह है कि भव्यजीव जो सिद्ध लोकमें पहुंचते हैं उनकी सिद्धगतिका उपादान कारण तो उन ही जीवोंका निश्चय धर्मरूप परिणमन है। वह निश्चयधर्मके कारण स्वयं जाता है, लेकिन उस गतिमें अन्य तप किया, संयम किया, तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया, उत्तम संहनन मिला—ये सब भी बाह्य कारण हैं, अर्थात् ये सब बहिरंग सहायकमात्र कारण हैं। जिस पुरुषको समागम अच्छा मिला, आजीविका अच्छी मिली अथवा नाना बड़प्पनकी बातें मिली हैं, ऐसी अच्छी स्थिति मिली है जिसमें उसको संक्लेश नहीं है, ऐसी स्थिति इस जीवके कल्याणमे बाह्य सहकारी कारण बनती है। भले ही कोई जीव इस समागमका दुरुपयोग करे, किन्तु कोई ऐसी स्थितिमें ज्ञानार्जनका चित्त करना चाहे, ध्यानको चित्त चाहे तो उसके लिये अवसर है।

प्राप्त अप्राप्त समागममें प्रायः लोकोंकी प्रवृत्ति—भैया! कुछ ऐसा भी अंदाज करिये जिस मनुष्यके पास जो वस्तु नहीं है उस मनुष्यको उस वस्तु सम्बन्धी तृष्णा उत्पन्न होती है, यह बात प्रायः करके कह रहे हैं, और जिसके पास जो समागम है वह पायी हुई चीजमें तृष्णा क्या करेगा, लोभ होगा, पर तृष्णा न होगी। तृष्णा और लोभमें कुछ अन्तर समझ लीजिए। पाई हुई चीजमें आसक्त होना लोभ है और न पाई हुई चीजकी प्राप्तिके लिये विकल्प बढ़ाना तृष्णा है। अब देखिये प्राप्त और अप्राप्तके बारेमें लोकप्रवृत्तिको। जैसे किसी भाईसे कहा जाय कि तुम रात्रिभोजनका त्याग कर दो तो किसीसे यह भी उत्तर मिल सकता है कि देखो साहब हम रात्रिको भोजन कभी नहीं करते, आज तक रात्रिभोजन नहीं किया। अच्छा तो रात्रिभोजनका त्याग करनेमें कुछ कठिनाई होती है क्या ? साहब त्यागकर देंगे तो फिर रात्रिमें भोजन करनेको मन चलेगा और नहीं त्यागते हैं तो रात्रिको भोजन करनेका मन नहीं चलता है। यों कुछ और बढ़कर देखें—जो पाया हुआ समागम है वह समागम प्रायः करके ज्ञान और वैराग्यका कारण बन सकता है। थोड़ा सत्संगति मिले, अच्छा वातावरण मिले, कुछ सुबुद्धि जगे तो ये बाह्य पुण्यकर्म भी, ये बाह्य पुण्य वैभव भी जीवके कल्याणमें सहकारी कारण होते हैं किन्तु निश्चयसे तो जो आत्मामें निश्चयधर्मका परिणमन होता है वह ही अनिवार्यरूपसे कल्याणका कारण बनता है।

धर्मद्रव्यके गतिहेतुत्वपर अन्य आत्मविषयक दृष्टान्त—धर्मद्रव्यके गतिहेतुत्वकी प्रसिद्धि में एक अन्य दृष्टान्त लीजिये—इस लोकरचनाके भीतर देखो, जैसे भव्य हो अथवा अभव्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो, इसका जो चारों गतियोंमें गमन होता है उस गमनका उपादान कारण तो उन-उन जीवों का आन्तरिक शुभ अशुभ परिणाम है फिर भी द्रव्यलिङ्ग, व्रत, दान, पूजा अव्रत आदि बहिरङ्ग सहकारी कारण होते हैं। जो जिस गतिमें जायगा उस गतिके योग्य जो परिणमन किया अन्तरङ्गमें, वह परिणाम तो निश्चयसे कारण है, पर मन, वचन, कायकी जो और क्रियाएँ की गई हैं वे क्रियाएँ बहिरङ्ग सहकारी कारण हैं, अथवा देखो कोई जीव विशुद्ध ऊँचा ध्यान बना रहा है तो उसकी आन्तरिक जो स्थिति है, परिणामोंकी जो विशुद्धि है वही-वही तो आन्तरिक मुनिधर्म है, उससे वह उन्नति कर रहा है, लेकिन बहिरङ्गमें निर्ग्रन्थ अवस्थामें जो भी क्रियाएँ की जाती हैं वे सब मुनिधर्मकी सहकारी कारण हैं। ऐसे ही जो जीव पुद्गल गमन कर रहा है वह उस गमनशक्तिसे गमन किया करता है, किन्तु उस प्रसंगमें धर्मद्रव्य नामक यह अमूर्त व्यापक तत्त्व द्रव्य इस जीव पुद्गलकी गतिमें बहिरङ्ग सहकारी कारण होता है। यों धर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी गतिका कारण होता है, इस सम्बन्धमें दृष्टान्त दिया गया है। अब अधर्मद्रव्यके स्वरूपका वर्णन करते हैं।

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥८६॥

अधर्मद्रव्यका स्वरूप व स्थितिहेतुत्वपर दृष्टान्त—जैसे जीव पुद्गलकी गतिमें बहिरङ्ग सहकारी कारण धर्मद्रव्य होता है ऐसे ही गति कर रहे हुए उन जीव पुद्गलोंके ठहरनेमें सहकारी कारण अधर्मद्रव्य होता है। इसमें यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है। जैसे मुसाफिरोंके अथवा घोड़ा आदिक तिर्यंचोंके ठहरनेमें सहकारी कारण पृथ्वी है। देखिये हम आप ठहरते हैं तो पृथ्वीका सहारा लिए बिना नहीं ठहर सकते, तो हम आपके ठहरानेमें कारणभूत यह पृथ्वी है कि नहीं? जैसे हम इस चौकीपर बैठ गये तो हम अपनी ताकतसे बैठे हैं या चौकीकी ताकतसे बैठे हैं? हम तो अपनी ही ताकतसे, अपने ही परिणमनसे बैठे हैं। सबको देखनेमें लग रहा है कि चौकीकी ताकतसे बैठ गए, पर यह चौकी बहिरङ्ग सहकारी कारण है। ऐसे ही इस पृथ्वीपर चलते हुएमें ठहर जायें तो इस पृथ्वीने हमें जबरदस्ती नहीं ठहराया है, हम अपनी ही शक्तिसे ठहरते हैं, पृथ्वी हमारे ठहरानेमें सहकारी कारण है।

स्थितिहेतुत्वपर पथिक छायाका दृष्टान्त—अधर्मद्रव्यके स्थितिहेतुत्वमें एक दृष्टान्त और प्रसिद्ध लिया जाता है कि जैसे मुसाफिरके ठहरानेमें पेड़की छाया सहकारी कारण है, इस दृष्टान्तसे भी यह दृष्टान्त जोरदार है। यदि कोई मुसाफिर बात झूठ करनेके लिये हठ कर जाय कि हम इसी सड़कपर ठहरते हैं, धूपों मरे या कुछ भी हो और कहे अब बतावो छाया ठहरनेमें कहाँ कारण हुई? तो इसके मुकाबले पृथ्वीका दृष्टान्त ठीक है ना। तखत आदिपर ठहरे कोई तो वह भी पृथ्वीकल्प है, किन्तु छाया वाला दृष्टान्त भी कमजोर नहीं है। दृष्टान्त

Version 1

जितने अंशको सिद्ध करनेके लिये दिया जाता है उतनेके लिये ही समझना होता है। देखिये— कहीं वह छाया बुलाकर तो उस मुसाफिरको नहीं ठहराती है। तो वह छाया उस मुसाफिरके ठहरानेमें सहकारी कारण है। कहीं वह छाया उस मुसाफिरको पकड़कर अपनी ओर खींचती नहीं है। वह तो वहीं की वहींपर है। यह मुसाफिर स्वयं अपनी इच्छासे वेदनाशान्तिका प्रयोजन लेकर छायाके नीचे पहुंच जाता है।

छायाका उपादान व निमित्त—देखिये पेड़की छाया कहना, यह भी व्यवहारकी बात है। पेड़के नीचे जो छाया पड़ती है बतावो वह छाया पेड़की है कि पृथ्वीकी है? पेड़की चीज, पेड़का गुण, पेड़की परिणति, पेड़का प्रभाव, पेड़का सर्वस्व पेड़में रहेगा या उससे बाहर अन्यत्र जायगा? किसी भी द्रव्यका परिणमन, किसी भी द्रव्यका प्रभाव उस द्रव्यसे बाहर कहीं नहीं जाता। लो पेड़की छाया तो वह नहीं रही। पेड़की जो कुछ चीज है वह पेड़में ही समायी हुई है। पेड़रूप है तो वह रूप उस वृक्षसे बाहर तो नहीं है ना? वृक्षमें गंध है तो वह गंध भी वृक्षसे बाहर नहीं है। इसमें तो आप शंका कर सकते हैं कि वृक्षकी गंध तो मीलों तक फैल जाती है। वृक्षकी गंध तो बाहर चली गई। अरे वृक्षकी गंध बाहर नहीं गई। वृक्षकी गंध वृक्षमें है, पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि वृक्षके पास लगे हुए परमाणु स्कंध वृक्षके सुगंधित अंशके सन्निधानका निमित्त पाकर जो कुछ सूक्ष्म स्कंध उसके पास हैं, वे भी गंधरूपसे परिणम जाते हैं और यों पासके स्कंध गंधरूपसे परिणमते चले जाते हैं। जहाँ तक यह परिणमन विधान बन सकता है वहाँ तक यह गंध फैल जाती है। पर उस वृक्षसे बाहर वह गंध नहीं है। जैसा भी हरा, पीला, काला रूप है वह वृक्षसे बाहर है क्या? नहीं है। और वृक्षमें कठोरता, वृक्षकी चिकनाई उस वृक्षमें ही समाई हुई है। वृक्षकी चीज वृक्षमें ही है, वृक्षसे बाहर नहीं है। और छाया तो वृक्षसे बहुत दूर है। कभी कभी तो उस वृक्षके नीचे भी वह छाया नहीं रहती, वृक्षसे पच्चीस हाथ दूर कहीं वह छाया पड़ती है। तो वह छाया उस वृक्षकी नहीं है, किन्तु सूर्यके प्रकाशका जो अवरोधन होता है उस स्थितिमें वह पृथ्वी ही खड़े हुए वृक्षका निमित्त पाकर छायारूप परिणम जाती है।

दृष्टान्त और दार्ष्टान्तमें उदासीननिमित्तपनेकी सिद्धि—यह मुसाफिर जब उस वृक्षकी छायामें पहुंचता है तो जैसे छाया उदासीन बहिरङ्ग सहकारी कारण है, इस जीवको जबरदस्ती अपनी ओर खींचती नहीं है, इसी प्रकार यह अधर्मद्रव्य भी चलते हुए द्रव्य पुद्गलके चलनेमें सहकारी कारण है। इस गाथामें पृथ्वीका दृष्टान्त दिया गया है। जैसे पृथ्वी स्वयं पहिले से ही ठहरी हुई है और किसी चलते हुए जीवपुद्गलको यह जबरदस्ती ठहराती भी नहीं है, किन्तु स्वयं ही ठहरे हुए घोड़ा मनुष्य आदिक जीवोंको ठहरानेमें उदासीन और अविनाभूत सहकारी कारणमात्र होकर अनुग्रह करती है, ऐसे ही यह अधर्मद्रव्य स्वयं चलता हुआ ठहरता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
नहीं है अथवा चलते हुए जीव पुद्गलको जबरदस्ती ठहराती नहीं है, किन्तु जो ठहर रहे हैं अपनी शक्तिसे उनके इस ठहरानेमें अधर्मद्रव्य बहिरङ्ग सहकारी कारण मात्र होता है। यदि यह धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य चलने और ठहरानेका काम जबरदस्ती करता होता तो आज धर्म और अधर्मकी बड़ी विकट लड़ाई होती, कोई जबरदस्ती ढकेलता, कोई जबरदस्ती ठहराता। यह उदासीन सहकारी कारण है, पर उपादान कारण तो यह चलने वाला और ठहरने वाला जीव पुद्गल ही स्वयं है।

उपग्रहके अतिरिक्त अन्य लक्षणोंमें धर्म व अधर्मद्रव्यकी समानता—धर्मद्रव्य गतिका निमित्त है और अधर्मद्रव्य स्थितिका निमित्त है, बाकी और सब बातें अधर्मद्रव्यमें धर्मद्रव्यकी ही तरह समझना। जैसे धर्मद्रव्य रूप, रस, गंध, स्पर्शरहित है इस ही प्रकार अधर्मद्रव्य भी इस मूर्तिकतासे रहित है। जैसे धर्मद्रव्य लोकमें सर्वत्र भरा पड़ा हुआ है ऐसे ही यह अधर्मद्रव्य भी लोकमें सर्वत्र भरा पड़ा हुआ है। तत्त्वार्थसूत्रके पंचम अध्यायमें एक सूत्र आया है—धर्माधर्मयोः कृत्स्ने। देखो यहां कृत्स्ने शब्द बोलना। कुछ कठिनाई मालूम पड़ी ना, इस शब्दके बोलनेमें जीभको सारे मुखमें घुमाना पड़ेगा तब यह शब्द बोला जा सकेगा और इस शब्दका अर्थ क्या है? सबमें। धर्म और अधर्मद्रव्यका अवगाह सब लोकाकाशमें है। आचार्यदेवने हम आपके सामने इस तरहका दिक्कत वाला शब्द क्यों रख दिया? तो उस समय आचार्यदेवने अपनी लीला दिखाई। जैसे बच्चे लोग होते हैं वे चलते हैं तो सीधे नहीं चलते हैं, कलासहित चलते हैं, उठे बैठे तो कलासहित। ऐसे ही आचार्यदेवने भी इस शब्दको बोलकर अपनी लीला दिखा दी है। इस शब्दमें यह कला छिपी हुई है कि जैसे इस शब्दके बोलनेमें जीभको सारे मुखमें घूमना पड़ता है, अर्थात् सारे मुखमें जीभ व्यापक हो जाती है, ऐसे ही धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य इस लोकमें व्यापकर रह रहे हैं। जैसे धर्मद्रव्य निरन्तर लोक व्यापने घनरूप स्थित है त्यों ही अधर्मद्रव्य इस लोकमें घन हैं। जैसे धर्मद्रव्य असंख्यातप्रदेशी है ऐसे ही अधर्मद्रव्य भी असंख्यातप्रदेशी है। शेष जो लक्षण धर्मद्रव्यमें हैं वे ही लक्षण इस अधर्मद्रव्यमें भी हैं। फिर भी इन दोनोंके कार्यमें विपरीतता है, एक गतिमें कारण है तो एक ठहरानेमें कारण है।

अधर्मद्रव्यकी स्थितिहेतुतापर आध्यात्मिक दृष्टान्त—अब इस हेतुताको आध्यात्मिक दृष्टिके दृष्टान्तसे भी देखिये। जैसे कोई जीव निज शुद्ध आत्मस्वरूपमें ठहरता है तो उस शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित होनेका निश्चयसे कारण तो रागद्वेषरहित निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यमात्र अन्तस्तत्वका सम्वेदन है और व्यवहारसे अरहंतादिक पंचपरमेष्ठियोंके गुणोंका वर्णन सहकारी कारण है। अपने आत्मामें निर्विकल्प स्थिति करना चाहिए अर्थात् यह आत्मा आत्मामें ही निस्तरंग होकर ठहर जाय तो इस आत्मस्थितिका वास्तवमें कारण क्या है? उस ही का जो
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
रागद्वेषरहित निर्विकल्प शुद्ध ज्ञानस्वरूपका सम्वेदन है वह आत्मस्थितिमें कारण है, पर ऐसी आत्मस्थिति करनेके लिए उस भव्य जीवने पहिले और क्या-क्या प्रयत्न किया है ? उसने अरहंत सिद्ध आदिक परमेष्ठियोंके गुणोंकी भक्ति की है। यद्यपि यह भक्ति आत्मस्थितिका निश्चय कारण नहीं है, लेकिन बहिरङ्ग सहकारी कारण है। इसी प्रकार जीव और पुद्गलों को स्थितिका निश्चयसे अपना-अपना स्वरूप ही उपादान कारण है, फिर भी स्थितिका बहिरङ्ग सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। इस प्रकार अजीव अमूर्तपदार्थोंमें प्रथम ही प्रथम धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका वर्णन किया। जीव व पुद्गलोंका गति व स्थितिमें विशेष क्रिया विक्रियाका सम्बन्ध है, इसी कारण प्रथम धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका वर्णन किया गया।

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दोविय मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ताय ॥८७॥

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यके सत्त्वकी सिद्धि—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य इन दोनों द्रव्योंकी प्रसिद्धि साधारणजनोंमें नहीं है। उन दोनों द्रव्योंके सद्भावमें यहाँ एक हेतु रखा जा रहा है जो कि धर्म अधर्मकी सिद्धिमें पूर्ण समर्थ है। धर्म अधर्मद्रव्य हैं, अन्यथा लोक और अलोक का विभाग नहीं किया जा सकता था। जीवादिक समस्त पदार्थोंका एक क्षेत्रमें रहने का नाम है लोक, अर्थात् जितने क्षेत्रमें जीवादिक समस्त पदार्थ रहा करते हैं उसे लोक कहते हैं और जहाँ केवल आकाश ही आकाश पाया जाता है उसे अलोक कहते हैं। लोकका अर्थ है लोक्यंते सर्वद्रव्याणि यत्र सः लोकः। जहाँ समस्त द्रव्य देखे जायें, पाये जायें उसे लोक कहते हैं और न लोकः इति अलोकः। जहाँ समस्त द्रव्य न पाये जायें और केवल आकाश ही है उसे अलोक कहते हैं। यदि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य न होते तो लोक और अलोकका विभाग नहीं हो सकता था। इससे सिद्ध है कि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य हैं।

धर्म व अधर्मद्रव्यकी सिद्धिका विवरण—अब इस इस अनुमानका विवरण कर रहे हैं। जीव और अपने स्वभावसे गति और गतिपूर्वक स्थितिका परिणमन करनेमें समर्थ है, अर्थात् जीव अपनी शक्तिसे गमन करते हैं, पुद्गल अपनी शक्तिसे गमन करते हैं और गमन करते हुए ये दोनों जब ठहरते हैं तो अपनी शक्तिसे ही ठहरा करते हैं, उन दोनोंकी जो कि गतिपरिणमनको स्वयं अनुभव रहे हैं और स्थिति परिणमनको स्वयं अनुभव रहे हैं, उन दोनों जीव पुद्गलोंकी गति और स्थितिका बहिरङ्ग कारण निमित्त कारण यदि धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य न होता तो ये जीव पुद्गल निरर्गल गति और स्थितिको प्राप्त हो जाते, अर्थात् धर्मद्रव्य का तो अभाव मान लिया गया और जीवमें चलनेकी सामर्थ्य स्वभावसे है सो वह तो चलता रहता। कहाँ तक जायें, कहीं ठहरें कैसे ? कोई सिद्धान्त तो ऐसा मान भी रहे हैं। जीव जब मुक्त हो जाता है तो यह ऊपर चलता रहता है। और कहाँ तक चलता है ? चलता ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
रहता है। ठहरनेकी बात ही नहीं है। ऐसा ऊर्ध्व गमन माना कि कहीं रुकता ही नहीं। अब देख लो—ऐसे मुक्त जीवको चलने ही चलनेका काम पड़ा हुआ है। वे कब तक चलेंगे ? अनन्तकाल तक चलेंगे। लो और विडम्बना बना दी।

धर्म व अधर्मद्रव्यमें लोकालोकविभागहेतुता—गतिमें समर्थ यह जीव स्वयं है, पर यह कहीं जाकर ठहरता तो है जिससे आगे कोई जीव न पाया जाय। इसका कोई बहिरङ्ग कारण न होता तो यह व्यवस्था न बन सकती थी। गतिका कारण बहिरङ्ग धर्मद्रव्य है, ऐसे ही इस स्थितिका कारण बहिरङ्ग अधर्मद्रव्य है। यदि यह धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य न होता तो लोक और अलोकका विभाग भी नहीं सिद्ध हो सकता था। धर्म और अधर्मद्रव्यको, गति-स्थितिका बहिरङ्ग कारण मान लेनेपर यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह तो लोक है और यह अलोक है।

लोककी सीमितता—सीधीसी बात यह है कि यह लोक परिमित तो अवश्य है, जो चीज पिण्डरूप होती है उस पिण्डरूपका किसी जगह समाप्त होना यह तो है ही, असीम तो पिण्ड होता नहीं, तो यह पिण्ड यह द्रव्योंका संचय जहाँ तक भी हो वह लोक कहलाता है। आप उसे बहुत दूर तक मानें तो वही बात तो ३४३ घन राजू बताकर कही गई है। एक राजू कितना बड़ा होता है ? जिसमें असंख्याते द्वीप समुद्र समा गये, मध्य लोकमें। प्रथम द्वीप से प्रथम समुद्र दुगुना है, उससे दूना दूसरा द्वीप है, इस प्रकार दूने-दूने विस्तार वाले द्वीप-समुद्र हैं। जम्बूद्वीप एक लाख योजनके विस्तारका है तब आप समझिये असंख्यातवाँ अन्तिम द्वीप कितने विस्तार वाला होगा ? ये सब द्वीपसमुद्र मिलाकर भी एक राजू नहीं हुए। एक राजूसे भी कम है अभी क्षेत्र। और, यह राजू तो एक प्रतररूपमें बताया। उतने ही राजू नीचे व सर्वत्र घनरूप, ऐसे ३४३ घन राजूप्रमाण लोक है। यहाँ तक ही जीव और पुद्गलका गमन है, आगे नहीं है। इस कारण धर्मास्तिकायका अभाव है। यदि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य न होते तो यह लोक और अलोकका विभाग न बनता।

धर्म व अधर्मद्रव्यकी विभक्तता व अविभक्तता—अब अन्य बातें धर्म अधर्ममें देखो। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों परस्पर भिन्न-भिन्न अस्तित्वसे सो गए हैं, अतएव विभक्त हैं। धर्मद्रव्यका अस्तित्व धर्मद्रव्यमें है, अधर्मद्रव्यका अस्तित्व अधर्मद्रव्यमें है, ये विभक्त है, भिन्न भिन्न हैं और एक क्षेत्रमें रहनेके कारण अविभक्त हैं। जैसे सिद्ध लोकमें सिद्ध भगवान बिराजे हैं, वे समस्त सिद्ध प्रत्येक सिद्ध अपने अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपका अपने-अपनेमें अनुभव किया करते हैं। इस कारण प्रत्येक सिद्ध एक दूसरेसे भिन्न है, फिर भी वहाँ अमूर्त ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र सिद्ध जीव जहाँ जो बिराजे हैं उस ही जगह अनन्त सिद्ध भी मौजूद है अतएव वे अविभक्त हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एकमाही एक राजे एक माहि अनेकनो—हिन्दी स्तुतिमें एक जगह लिखा है कि "जो एक माँही एक राजै, एक माहि अनेकनो। एक अनेकनकी नहीं संख्या, नमो सिद्ध निरञ्जनो।।" बात कितनी सीधी है, किन्तु इसमें मर्म बहुत है। वे सिद्ध भगवान एकमें अनेक विराज रहे हैं, एकमें एक राज रहे हैं। प्रत्येक सिद्ध आत्मा जो अपने स्वरूपसे है वह अपने स्वरूपमें ही है, एकमें एक ही है, एकमें दूसरा सिद्ध नहीं पहुंचता है और फिर जिस जगह वह सिद्ध है वह अमूर्त पवित्र चेतन है, उस ही जगह अनेक सिद्ध भी विराज रहे हैं। यों देखो एकमें अनेक बिराज रहे हैं।

एक अनेकनकी नहीं संख्या नमौं सिद्ध निरञ्जनो—सिद्धोंकी इस स्तुतिमें एक तीसरी बात क्या कही है। 'एक अनेकनकी नहिं संख्या नमो सिद्ध निरञ्जनो। सिद्धकी संख्या नहीं है, अनंत हैं, पर आध्यात्मिक एक मर्म यह है कि जब हम सिद्ध भगवानके शुद्ध स्वरूपपर उपयोग लगाते हैं तो उस उपयोगमें केवल एक शुद्ध चित्प्रकाश ही दृष्ट होता है, और ऐसे उपयोगकी स्थितिमें न एक ठहरता है, न अनेक ठहरते हैं। जैसे कुछ दार्शनिक लोग इस ब्रह्मको एक मानते हैं। जैनसिद्धान्त भी इन समस्त जीवोंके जब स्वभावपर दृष्टि देता है तो उस दृष्टिसे इस जैनसिद्धान्तमें भी यह चैतन्यमात्र ही नजर आता है, यों वह चैतन्यस्वभाव एक कह लीजिए। अब कुछ देरके लिए इसे एक मान लो। एकका अर्थ एक भी है और एकका अर्थ समान भी है। जैसे कोई तीन चार मित्र बैठे हों तो कोई कहे कि ये तो साहब एक ही हैं, उस एकका अर्थ समान है। यह चैतन्यस्वरूप सब जीवोंमें एक है अर्थात् समान है, एक दृष्टि इसमें और दृढ़ लगायें तो चैतन्यस्वरूपमें व्यक्तियाँ तो नजर नहीं आतीं। वह तो एक स्वरूप है प्रतिभास है, प्रकाश है, अतएव वह एक है। जरा और गहरी दृष्टिसे देखो तो एक है, ऐसा कहना सहज सिद्धस्वरूपके प्रतिभासमें कलंक है, वहाँ एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है तो क्या है, कितना है ? कुछ नहीं है। जो है सो अनुभवमें आ रहा है। यों सिद्ध भगवानके उस सहजस्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो वह न एक है, न अनेक है, किन्तु क्या है ? कोई निरञ्जन सिद्धत्व है।

सिद्धोंके दृष्टान्तपूर्वक धर्म व अधर्मद्रव्यमें विभक्तता व अविभक्तताकी सिद्धि—इस स्याद्वाददृष्टिमें चलकर निरख लीजिए—जैसे सिद्ध भगवान परस्परमें विभक्त हैं, किन्तु एक क्षेत्रमें ही विराज रहे हैं इस कारण अविभक्त हैं। ऐसे ही यह धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य स्वरूप दृष्टिसे विभक्त है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, प्रमेयत्व—ये ६ साधारण गुण हैं और साथ ही धर्म और अधर्ममें जो कोई एक विशेष गुण है उस विशेष गुणके कारण यह साधारण धर्म भी उस-उस धर्मीके धर्म हैं, धर्मद्रव्यके सर्व धर्म धर्मद्रव्यमें हैं, अधर्मद्रव्यके सब धर्म अधर्मद्रव्यमें हैं। इन ६ गुणोंकी साधारणता, समानता इस दृष्टिसे है। कहा ऐसा नहीं है कि अस्तित्व गुण एक है और वह सबमें व्याप रहा है, ऐसा एकपना द्रव्यमें हुआ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करता है, व्यक्तिमें हुआ करता है। भावमें क्या संख्या ? आपमें कितना क्रोध है २-३-४-१०, क्या कुछ गिनती बता सकते, भावमें क्या गिनती है ? गिनती द्रव्यमें हुआ करती है, पिण्ड में, प्रदेशमें गिनती हुआ करती है। यह शुद्ध स्वरूप तो भावात्मक है, उसमें क्या गिनती ? तो जैसे वह सिद्ध विभक्त और अविभक्त दोनों है इस ही प्रकार धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य भी विभक्त और अविभक्त है।

धर्म व अधर्मद्रव्यकी निष्क्रियता—ये दोनों द्रव्य निष्क्रिय हैं, इनमें क्रिया नहीं है, ये डोलते नहीं, चलते नहीं, हिलते नहीं, इनमें कभी भी परिस्पंद नहीं। ये समस्त लोकमें रह रहे हैं और जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका उपग्रह किया करते हैं, अतएव ये दोनों द्रव्य हैं। इस प्रकार धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सिद्धि युक्तिपूर्वक की गई है। अब अगली गाथामें यह बतावेंगे कि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य हैं तो गति और स्थितिमें कारणभूत, परन्तु हैं अत्यन्त उदासीन। इस उदासीनताका वर्णन अगली गाथामें किया जा रहा है।

णय गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गती सप्पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥८८॥

धर्मास्तिकाय न तो खुद जाता है और न अन्य द्रव्यका गमन कराता है। वह धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलकी गतिका प्रवर्तक मात्र होता है, निमित्तमात्र होता है और इस ही प्रकार अधर्मद्रव्यको भी समझना। वह स्थितिका निमित्तमात्र होता है।

धर्मद्रव्यमें प्रेरकगतिहेतुताका अभाव—कहीं धर्मद्रव्यको इस प्रकार गतिका कारण न समझ लेना कि जैसे घोड़ापर चढ़ा हुआ असवार। घोड़ा चलता है ना, तो असवार भी चल रहा है। उस असवारके चलानेका निमित्त जैसे यह घोड़ा है इस तरह जीव और पुद्गल की गतिका निमित्त धर्मद्रव्य नहीं है। वह चलता हुआ गतिका कारण नहीं बनता, अथवा जैसे चलती हुई हवा ध्वजाको हिलाने-डुलानेका कारण बनती है इसी प्रकार जीव और पुद्गलकी गतिका कारण धर्मास्तिकाय नहीं है। हवाकी तरह यह धर्मास्तिकाय चल-चलकर जीव और पुद्गलका गमन कराता हो ऐसा स्वरूप धर्मद्रव्यमें नहीं है, क्योंकि धर्मद्रव्य निष्क्रिय है। निष्क्रिय होनेके कारण यह रंच भी गति परिणमनको प्राप्त नहीं हो सकती है।

दृष्टान्तपूर्वक धर्मद्रव्यकी उदासीन गतिहेतुताकी सिद्धि—यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि धर्मद्रव्य जहाँका तहाँ जैसाका तैसा स्थित है, कुछ भी हिलता-डुलता नहीं, प्रेरणा नहीं करता, फिर यह गति परिणमनका कारण कैसे हो जायगा ? कैसे जीव पुद्गलकी गतिमें धर्मद्रव्य सहकारी कारण बन सकेगा ? तो इसका समाधान सुनिये। जैसे पानी मछलियोंके चलाने में बहिरङ्ग कारण है, जल खुद चलनेके लिए प्रेरणा नहीं करता। वह उदासीन रूपसे जहाँका तहाँ पहिलेसे ही अवस्थित है, तो उदासीन अवस्थित वह जल जैसे मछलीके गमनमें बहिरङ्ग

Version 1

कारण है, ऐसे ही न चलता हुआ यह धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलके गमनमें कारण है। वह उदासीनरूपसे ही गतिका हेतुभूत है। जैसे धर्मद्रव्यमें यह उदासीन हेतुता है इसी प्रकार अधर्मद्रव्यकी भी बात निरखो।

अधर्मद्रव्यमें प्रेरकस्थितिहेतुताका अभाव—अधर्मद्रव्य किसीको ठहरानेमें इस प्रकार कारण नहीं होता जैसे कि चलते हुए घोड़ेपर असवार मनुष्य चल रहा है ना, सो घोड़ा जब ठहर जाय तो मनुष्यको भी ठहर जाना पड़ता है, इस तरह अधर्मद्रव्य किसी जीवपुद्गलको जबरदस्ती ठहराता हो ऐसा नहीं है। अधर्मद्रव्य तो पहिलेसे ही स्थिर स्थित है, उसमें गमन होता ही नहीं है, गतिपूर्वक स्थिति अधर्मद्रव्यमें नहीं है, वह तो घोड़ा गतिपूर्वक स्थित हुआ है। अधर्मद्रव्यका यह छोड़ा असवारका दृष्टान्त योग्य नहीं है। यह अधर्मद्रव्य निष्क्रिय होनेके कारण कभी भी गमनपूर्वक स्थितिके परिणमनसे परिणमन नहीं होता है।

दृष्टान्तपूर्वक अधर्मद्रव्यमें उदासीनस्थितिहेतुताकी सिद्धि—यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि फिर यह अधर्मद्रव्य गतिपूर्वक ठहरने वाले दूसरे जीव पुद्गलका हेतुभूत कर्ता कैसे हो जायगा? उसके समाधानमें यह दृष्टान्त दिखाया है कि जैसे घोड़ा चल रहा है, वह चलता हुआ रुक जाय तो उसके उस ठहरनेमें पृथ्वी बहिरंग कारण है। इस प्रकार जीव और पुद्गल चल रहे हैं, चलते हुए जीव पुद्गल ठहर जायें तो उनके ठहरनेमें धर्मद्रव्य बहिरङ्ग कारणभूत है। इस प्रकार धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सिद्धि करनेके पश्चात् अब इस गाथामें उसकी उदासीनता बताई गई है। निमित्त तो निमित्तमात्र ही हुआ करता है, चाहे वह अधर्मद्रव्यकी बात हो अथवा अन्य बात हो, सभी पदार्थ निमित्तमात्र हैं, और वे अपनेमें से कुछ भी द्रव्य गुणपर्याय निकलकर कहीं बाहरी पदार्थोंमें नहीं जाया करते हैं। सब अपने-अपने स्वरूपमें स्वतन्त्रतया परिपूर्ण हैं।

निमित्तके प्रकार और वस्तुका स्वातन्त्र्य—परिणतिमें वस्तुस्वातन्त्र्य होनेपर भी निमित्तकी परिस्थिति देखकर निमित्तका भेद किया जाता है। कहीं यह बात नहीं है कि कोई प्रेरक निमित्त अपने द्रव्य गुण पर्यायको उपादानमें चलाकर उस प्रेरित करता हो, किन्तु निमित्तभूत पदार्थ यदि क्रियासम्पन्न हैं तो उन्हें प्रेरक निमित्त कहते हैं। यदि वे क्रियासम्पन्न नहीं हैं तो लोकमें उन्हें उदासीन निमित्त कहते हैं और इस प्रकार लोकभावनाके कारण इसके दो भेद कर दीजिए। क्योंकि यह बात सबमें समान है। तो कोई भी निमित्त अपने द्रव्य गुण और पर्याय उपादानमें चलाकर उपादानको परिणमाया नहीं करते। जैसे दो पहलवान लड़ रहे हैं, लड़ने जैसी स्थितिसे बढ़कर और प्रयोगका क्या दृष्टान्त दिया जाय, जहाँ बल भी लग रहा है। एक बड़ा पहलवान छोटे पहलवानको उलट दे, चित कर दे, ये सब बातें बन गयीं तो भी स्वरूपको स्वरूपमें देखो तो उस समय भी उस बड़े पहलवानने जो कुछ भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यत्न किया, अपने शरीरमें यत्न किया, जो भी परिणमाया अपने शरीरको परिणमाया, किन्तु उस परिणमते हुए शरीरके संयोगके समयमें आया हुआ यह छोटा पहलवान यह अपनी क्रिया से परिणम रहा है। इस बड़े पहलवानने छोटे पहलवानमें अपने रूप, रस, गंध, वर्ण, क्रिया, स्वभाव, प्रभाव कुछ भी नहीं डाला है। उन दोनों पहलवानोंकी सारी क्रियाएँ अपनेमें हुई हैं, यह भी दिख रहा है, किन्तु साथ ही यह भी तो दिख रहा है कि कैसा यह प्रेरक निमित्त है, कैसा इसने उसे पटक दिया ? तो जो स्वयं क्रियासम्पन्न हुआ है व जो क्रियासम्पन्न नहीं है उसमें प्रेरक और उदासीनका भाव दिखाया जा सकता है। वहां भी प्रेरकताका कथन उपचार से है।

धर्म अधर्मद्रव्यकी उदासीननिमित्तता—जो शाश्वत अवस्थित हैं, जहाँके तहाँ ठहरे हुए हैं ऐसे शाश्वत अवस्थित धर्म और अधर्मद्रव्य उदासीन निमित्त कारण हैं। जब ये जीव-पुद्गल चलें तो उनके चलनेमें यह धर्मद्रव्य बहिरङ्ग सहकारी कारण है और जब चलते हुए ये ठहर जायें तो उस समय अधर्मद्रव्य बहिरङ्ग सहकारी कारण है।

वस्तुस्वातन्त्र्य व उदासीननिमित्तता—यह निमित्त उपादानकी व्यवस्था धर्म और अधर्मद्रव्यके दृष्टान्तसे सर्वत्र विशेष स्पष्ट हो जाती है। हाँ केवल एक निष्क्रिय निमित्त और सक्रिय निमित्त इतने कहनेका अन्तर है। इतना अन्तर होनेपर भी वस्तुकी स्वतंत्रतामें कहीं कोई बाधा नहीं आती है। किसी बालकने किसी बालकको पीट दिया, ठीक है, परन्तु उस बालकमें जो दुःख वेदना रोना जो भी क्षोभ होगा वह बालक अपने आपमें अकेले ही करेगा कि यह पीटने वालेकी परिणतिको लेकर करेगा या परस्पर दोनों मिलकर करेंगे ? जब कभी किसी घर इष्टका वियोग हो जाता है तो उसके घर फेरा करने वाले लोग आते हैं, महिलायें आती हैं तो वे रोती हुई आती है, घरके लोग भी रोने लगते हैं, पर जितने भी लोग वहाँ रो रहे हैं और जिस डिग्रीमें रो रहे हैं वे सब अपने आपमें अकेलेमें अकेलेके परिणमनसे रोनेका परिणमन कर रहे हैं। किसीके रुदनको समेटकर ग्रहण करके दूसरा रोता हो, ऐसा नहीं होता।

ये धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें केवल एक बहिरङ्ग कारण होते हैं। इस प्रकार धर्म अधर्मद्रव्यका व्याख्यान किया गया है। अब आगे इसकी उदासीनताको एक दृष्टान्तसे सिद्ध करेंगे।

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि।
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥८९॥

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी गति और स्थितिमें उदासीन हेतुता—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य जीव तथा पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन कारण हैं, इसकी सिद्धिमें इस

Version 1

गाथामें एक मुख्य हेतु दिया गया है। देखो जिन जीवोंका गमन हो रहा है उन ही द्रव्योंकी स्थिति भी होती है। ये जीव पुद्गल जो गमन कर रहे हैं वे अपने परिणमनसे गमन करते हैं और वे ही वे ही जब गमन करके ठहरते हैं तो अपने परिणमनसे ठहरते हैं। उस गमन और ठहरनेमें ये दोनों द्रव्य बहिरङ्ग निमित्त कारण हैं। यदि यह धर्मद्रव्य जीव पुद्गलको किसी को चलाता होता और अधर्मद्रव्य ठहराता होता तो जिनकी गति होती है उनकी गति ही होती रहती और जिनकी स्थिति होती उनकी स्थिति ही होती रहती, क्योंकि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको एक बलाधानका बल मिल गया ना।

धर्म व अधर्मद्रव्यको प्रेरणक कारण माननेपर आपत्ति—यदि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यको प्रेरक मान लीजिए तो धर्मद्रव्य अपना पूरा बल लगाकर अपना काम करेगा, अधर्मद्रव्य अपना बल लगाकर अपना काम करेगा। सो कभी तो यह स्थिति हो जायगी कि इस जीवपुद्गलकी गति स्थितिमें झगड़ा बन जायगा। धर्मद्रव्य किसीको चला रहा है तो अधर्मद्रव्य उसका मुकाबला करेगा। अधर्मद्रव्य किसीको ठहरा रहा है तो धर्मद्रव्य उसे ढकेला करेगा अथवा कभी थोड़ी सभ्यता आ जाय, कोई किसीके काममें बाधा न डाले तो किसीका काम रुकेगा ही नहीं, धर्मद्रव्य जिसे चलाता है वह चलाता ही रहेगा और अधर्मद्रव्य जिसे ठहरा रहा है उसे वह ठहराता ही रहेगा, किन्तु दिखता तो यों है कि जब चलना है तो चलता है, जब ठहरता है तो ठहर जाता है, इसके चलने और ठहरनेमें इतनी स्वतंत्रता बनी हुई है। यह धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी उदासीनताका ही फल है।

स्वरूपदृष्टिसे वस्तुव्यवस्था—स्वरूपदृष्टिसे निरखें तो कोई भी निमित्त किसी दूसरे पदार्थपर जबरदस्ती नहीं करता, किन्तु ये परिणमने वाले उपादान ही स्वयं अपने आपमें ऐसी कला रख रहे हैं कि वे किसी योग्य निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी शक्तिसे विभाव रूप परिणम जाते हैं, ऐसी सब उपादानोंमें कला पड़ी हुई है। यह चर्चा बड़े कामकी है। धर्मपालनके लिए इस सम्यग्दर्शनकी सुलझ पा लेना अनिवार्य है। यह मैं आत्मा जब जिस रूप परिणमता हूँ किसी रूप परिणमता हूं। कभी मैं धनी बन गया, कभी मैं गरीब बन गया क्या परमार्थसे इस रूप हूं? नहीं। धनी होना, गरीब होना यह अपने आत्मामें है ही नहीं, किन्तु इस प्रकारके भावोंका परिणमन यह हो रहा है। जीव अपनेमें केवल भावोंका ही तो करने वाला बन रहा है। किसी अन्य पदार्थमें क्या करता है? तो यह जीव जब जिस प्रकार के विभाव भावोंका परिणमन करता है अपनी शक्तिसे, किन्तु वह परिणमन किसी अन्यको विषयमें लेकर हुआ है, अतएव कोई परपदार्थ हमारे इस विभाव परिणमनमें निमित्त है, फिर भी इस निमित्तभूत, आश्रयभूत पदार्थका कुछ भी द्रव्य गुण परिणमन इस उपादानमें नहीं गया। इस कार्यके बननेमें उपादानकी कला देखिये कि इसमें ऐसी योग्यता है कि ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्तको पाकर यह अमुक रूप परिणम जाता है। जरा इस वस्तुस्वातंत्र्यके दृष्टिरूपी अमृतका पान तो कीजिए, फिर देखिये कितना सन्तोष आता है ?

मिथ्या ज्ञानमें आनन्दका घात—यह मोही जीव मोहवश अपने स्वरूपसे चिगकर बाह्यपदार्थोंमें, बाह्य तत्त्वोंमें आत्मीय दृष्टि करके उलझ गया है और न जानें कितनी-कितनी प्रकारकी इसने कल्पनाएँ बनायी हैं और उन कल्पनावोंका यह जीव क्लेश भोग रहा है। अपना आनन्द अपनी दृष्टिके आधीन है, किसी अन्य पदार्थके आधीन आनन्द नहीं है। तो यह आत्मा स्वयं सहज परम आनन्दस्वरूप अपनी इस स्वरूपदृष्टिसे चिगकर, इस विशुद्ध अनुभूतिसे चिगकर जितना बाह्यपदार्थोंमें चले जानेका अपराध किया है उस अपराधका प्रायश्चित्त है। आनन्दस्वरूप तो यह स्वयं है, प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे अपने आपमें परिणत हुआ करता है। कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यपर जबरदस्ती नहीं करता। कोई मास्टर पढ़ाता है और बीसों बालक पढ़ते हैं तो यह मास्टर किसी बालकको जबरदस्ती ज्ञान पैदा नहीं कराता, किन्तु वे बालक स्वयं अपना हित विचारकर गुरुके वचनोंका निमित्तमात्र पाकर अपने आपमें अपनी समझका बल लगाते हुए यत्न कर रहे हैं और उस यत्नमें वे बालक स्वयं अपनेमें ज्ञानप्रकाश पा लेते हैं। देखनेमें तो ऐसा लगता हैं कि यह अमुक मास्टर देखो कितना कर्मठ है ? इन बच्चोंको घोट-घोटकर ज्ञान पिला रहा है, किन्तु कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थमें कुछ कर नहीं सकता है, व्यर्थ यह जीव मिथ्याज्ञानमें आनन्दका घात करता है।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी उदासीनहेतुताका वर्णन—यह धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य भी जीव और पुद्गलकी गति एवं स्थितिमें उदासीन निमित्तमात्र है। धर्मद्रव्य किसीकी गति का कारण बननेका अभ्यास नहीं कर रहा, यत्न नहीं कर रहा, वह निष्क्रिय अवस्थित है, ऐसे ही अधर्मद्रव्य भी स्थितिके हेतु बननेका श्रम नहीं कर रहा। ये दोनों पदार्थ गमन और स्थितिमें मुख्य कारण नहीं है। यदि ये गमनके और ठहरानेके मुख्य कारण होते तो जिनकी गति शुरू हुई है, हो रही है उनकी गति ही होती और जिनकी स्थिति ही हो रही है उनकी स्थिति ही होती। लेकिन देखा यह जा रहा है कि जैसे किसी भी एक पदार्थका अभी गमन हो रहा है तो उस समय बादमें उस ही पदार्थका ठहरना हो रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गलकी गतिमें और स्थितिमें कारण नहीं हैं, प्रेरक कारण नहीं हैं, किन्तु ये उदासीन कारण हैं, और यह भी कथन व्यवहारनयका है। निश्चयनयमें तो अन्य पदार्थोंकी दृष्टि ही नहीं रहती है।

व्यवहारनयसे हेतुताका वर्णन—निश्चयनयके विभागमें निमित्त उपादानकी व्यवस्था नहीं है, वह तो जो कुछ है एक ही को निरख रहा है। यहाँ फिर एक जिज्ञासा हो सकती है कि यदि ऐसी उदासीनता है अथवा व्यवहारनयसे ही व्यवस्था है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन कारण है तो फिर चलने वाले ठहरने वाले पदार्थ का गमन और ठहरना किस प्रकार होगा ? समाधान यह है कि सभी चलने वाले और ठहरने वाले पदार्थ निश्चयसे अपने ही अपने परिणमनसे गति और स्थितिको किया करते हैं, व्यवहारनयसे देखनेपर उसमें निमित्त धर्म अधर्मद्रव्य हैं। निश्चय एक ही पदार्थको निरखता है, व्यवहार अनेक पदार्थोंको निरखता है। निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था उपादान निमित्तकी चर्चा व्यवहारमें ही सम्भव है। निश्चयनय तो केवल एक वस्तुस्वरूपको देखा करता है। इस दृष्टिमें निमित्त लखा भी नहीं गया। यहाँ तक धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यका वर्णन हुआ है।

धर्म अधर्मद्रव्यके अवगमसे शिक्षा—धर्म अधर्मद्रव्यके इस वर्णनमें हम सारभूत शिक्षा क्या लें ? निर्विकार चिदानन्दस्वरूप शाश्वत आनन्दनिधन अहेतुक एक स्वभावसे भिन्न ये धर्म अधर्मद्रव्य हैं, ये हेय तत्त्व हैं, यह मैं शुद्ध आत्मतत्त्व उपादेय हूं और ये धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य हेय हैं और इतनी ही बात नहीं, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यके विषयमें जो चर्चा की गई है उस चर्चा में जो विकल्प बने हैं ये विकल्प भी इस शुद्ध आत्मतत्त्वमें नहीं हैं। यों समझिये कि सब कुछ गुजर रहा है, पर उस गुजरते हुए के भीतर गुप्त सुरक्षित मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हूं। यहाँ तक धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य अस्तिकायका व्याख्यान समाप्त हुआ, अब आगे आकाश नामक अस्तिकायका व्याख्यान किया जा रहा है। उसमें सर्वप्रथम आकाशद्रव्यके स्वरूपकी प्रसिद्धि करते हैं।

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥

आकाशका स्वरूप—समस्त जीवोंको और समस्त पुद्गलोंको, अन्य सभी द्रव्योंको जो भले प्रकारसे बिविर देता है उसे लोकमें आकाश कहते हैं। बिविर नाम बिलका है, मायने जो आये उसे समा दे। आकाशका काम क्या है ? जो आये उसे समा देना। तो सभी द्रव्यों का अवगाह लोकाकाशमें है। आगे नहीं है, किन्तु आकाशद्रव्यकी यह कला है कि सबको अपने आपमें अवगाह दे। यह सम्पूर्ण आकाशमें कला पड़ी हुई है। कोई न जा सके यह बात और है। कदाचित् मान लो ये जीव पुद्गल आदिक अलोकाकाशमें पटक दिये जाते तो क्या वह मना करता कि मेरेमें जगह नहीं है ? आकाशकी योग्यता, अवगाहशक्तिकी बात आकाशमें शाश्वत पड़ी हुई है। हाँ धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यका सद्भाव जहाँ तक है वहीं तक अन्य समस्त पदार्थोंका अवगाह बना हुआ है।

परिमित लोकाकाशमें अनन्त पदार्थोंके अवगाहकी एक जिज्ञासा—देखिये यह लोकाकाश कितने क्षेत्रमें है ? ३४३ घनराजूमें है। तब कितने प्रदेश हुए ? असंख्यात अर्थात् जिनकी गिनती नहीं है, किन्तु अन्त और सीमा तो है ना ? इससे बाहर लोकाकाश नहीं है।

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इस असंख्यात प्रदेशमें इतने पदार्थ कैसे समा गए ? प्रथम तो जीव ही अनन्तानन्त हैं। फिर एक एक जीवके निकट, एकक्षेत्रावगाही, एक-एक जीवसे सम्बद्ध अनन्त तो शरीर वर्गणायें हैं और उससे अनन्तगुणे तैजस वर्गणायें हैं। उनसे अनन्तगुणे कार्माणवर्गणायें हैं। यह तो एक-एक जीवसे सम्बद्ध बात है पर अनेक वर्गणायें जो जीवसे अबद्ध हैं, किन्तु जीवके साथ विस्रसा उपचित आहार व कार्माण वर्गणा हैं, वे भी अनन्तानन्त हैं। तो ये अनन्तानन्त जीव और उनसे भी अनन्तानन्त पुद्गल और लोकाकाशके बराबर ही ये असंख्यात कालाणु, धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये सबके सब इतनेसे छोटे लोकाकाशमें कैसे समा गए, ऐसी एक जिज्ञासा होती है। उसके उत्तरमें सुनिये।

परिमित लोकाकाशमें अनन्त पदार्थोंके अवगाहके प्रतिपादनमें एक दृष्टान्त—अवगाह की बातको दृष्टान्तसे समझें। जैसे एक कमरेमें एक दीपक जल रहा है। उसका प्रकाश खूब फैला हुआ है, उसीमें दूसरा दीपक जला दिया तो उसका भी प्रकाश समा जायगा। ऐसे ही समझो कि ये लोकाकाशके प्रदेश असंख्यात हैं, उनमें अनन्तानन्त जीव पुद्गल ये सब समा जाते हैं और इस समा जानेमें एक आकाशकी ही अवगाह योग्यतापर ध्यान न दें किन्तु अपने आपमें परमाणुवोंमें भी परस्परमें अवगाह करनेकी, प्रवेश करनेकी कला है। जिस प्रदेश पर एक परमाणु ठहर सकता है उस ही प्रदेशपर अनेक परमाणु ठहर सकते हैं। यहीं देख लो ना ? अपने जीवका विस्तार जितने क्षेत्रमें है उस ही क्षेत्रमें शरीरका विस्तार, कर्मका विस्तार यह सब पड़ा हुआ है। दूसरा दृष्टान्त लो।

लोकाकाशमें अनन्त पदार्थोंके अवगाहपर कुछ अन्य दृष्टान्त—एक गूढ़ नागरसका कोई औषधिपिण्ड है, उसमें बहुतसा स्वर्ण समा जाता है, यह कोई धातु रसायनकी विधिकी बात है अथवा ऊँटनीके दूधके घड़ेमें उतना ही मधु भर दो तो समा जाता है अथवा जो किया जा सकता है उसे देख लो। एक कनस्टरमें राख खूब ऊपरसे भरी हो, उसमें पानी भरते जावो तो साराका सारा पानी समा जाता है। यह दृष्टान्त जितनी बातको समझनेके लिए दिया जा रहा है उतना ही प्रयोग रखना है। अथवा मंदिरमें एक घंटा बजा, उस घंटेकी आवाज फैल गयी। उसी समय दूसरा घंटा बज जाय तो वह दूसरे घंटेकी आवाज पहिले घंटे की आवाजमें समा जाती है। तो जैसे यहाँ भी निरखते हैं कि एक पदार्थमें अनेक पदार्थ समा जाते हैं तो ये सब पदार्थ भी परस्परमें समाकर और फिर इस आकाशमें समा जायें, यह बात सिद्ध हो जाती है।

आकाशका परिज्ञान—इस षट्द्रव्यात्मक लोकमें समस्त शेष द्रव्योंका अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल इन ५ द्रव्योंको जो सर्वप्रकारसे अवगाह देनेमें निमित्तभूत है ऐसा विशुद्ध क्षेत्रात्मक जो द्रव्य है उसे आकाश कहते हैं। इस आकाशकी सिद्धिमें किसीको शंका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
और विवाद नहीं है। देखिये अमूर्त पदार्थ ५ हैं—जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन ५ अमूर्त पदार्थोंका इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता। इस कारणसे ये पाँचों ज्ञानमें आने बड़े कठिन हैं, लेकिन जीव और आकाश—इन दो अमूर्त पदार्थोंके बारेमें इसकी जानकारी लेने में बुद्धि चलती है। आकाशको तो यों कह दिया कि देखो यह जो पोल पड़ी है ना यही तो आकाश है। एक मोटी बुद्धिसे यह बात कही जाती है। यहाँ वस्तुतः जो आकाश है, जो उसके प्रदेश हैं, ६ साधारण गुणोंसे युक्त हैं, जिसमें षट्गुणहानि वृद्धि चलती रहती है ऐसे आकाश कौन जानता है? बस जो पोल देखा उसे लोग आकाश कहते हैं। कुछ भी कहें, पर आकाश द्रव्यको मान लेनेके लिए मनुष्योंकी बुद्धि चलती है।

जीवके परिज्ञानकी सुगमता—जीवको माननेके लिए भी सुगमतया बुद्धि चलती है। हालांकि इस जीवके निषेध करने वाले बहुभाग जीव हैं, फिर भी इस जीवकी प्रसिद्धि अनेक ज्ञानी संत पुरुषोंमें हो जाया करती है। क्यों हो जाती है? धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य भी तो अमूर्तिक हैं, उनके विषयमें क्यों नहीं परिज्ञान होता? और जीवद्रव्यके बारेमें क्यों परिज्ञान हो जाता है? इसका कारण यह है कि यह जानने वाला जीव स्वयं है और फिर इस जीव पर जो बात गुजरे उसे यह जीव नहीं जान सकता क्या? यदि यह ज्ञाता और होता और जीवद्रव्य दूसरा होता तो इसका जानना कठिन था, पर यह ज्ञाता ही तो जीव है। इस जीव में जो बात गुजरती है, अनुभवमें आती है, भोगता रहता है। उतना भुगतान पाना होता है, फिर भी यह ज्ञान नहीं किया गया ऐसा नहीं हो सकता। तो स्वातिरिक्त जितने अमूर्त पदार्थ हैं उन अमूर्त पदार्थोंमें आकाशद्रव्यका ज्ञान कर लेना अपेक्षाकृत दूसरोंके कुछ सरलसा मालूम हो रहा है। इस गाथामें आकाशका स्वरूप कहा है।

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥६१॥

लोककी द्रव्योंसे अनन्यता—जीव, पुद्गल, काय, धर्म और अधर्म ये सभी द्रव्य और कालद्रव्य भी लोकसे भिन्न नहीं हैं। इनका पिण्ड समूह ही तो लोक है। लोकका जहाँ स्थान है उसे लोकाकाश कहते हैं। इस लोकाकाशसे वह आकाशद्रव्य अन्य भी है और अनन्य भी है, ऐसे आकाशद्रव्य अनन्त हैं। इस गाथामें बात मुख्य यह बतायी है कि आकाश लोकसे भी बाहर है। लोक नाम है समस्त द्रव्योंके समूहका और आकाश नाम है अवगाहना देने वाले एक पदार्थका। तो यह आकाश इस लोकसे भिन्न भी हो गया और अभिन्न भी हो गया। चूँकि आकाश एक अखण्ड द्रव्य है अतएव वह लोकाकाशमें भी है और अलोकाकाशमें भी है।

निश्चयसे प्रत्येक पदार्थकी मात्र स्वस्वरूपता—यहाँ समस्त पदार्थोंके समूहको इस लोकसे अभिन्नता बताई गई है, तो भी निश्चयसे वहाँ भी प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपका एकत्व लिए हुए है। यह व्यवहारदृष्टिका कथन है। यह लोकाकाश है और समस्त द्रव्योंके समूहका नाम लोक है। जीवद्रव्यमें तो जीवके अतिरिक्त शेषके सभी द्रव्योंसे भिन्नता है ? मूर्तिरहित केवलज्ञान और सहज परम आनन्द और निरञ्जन होना इन लक्षणोंको देखा जाय तो जीव शेष द्रव्यसे भिन्न है और सब द्रव्य इस जीवसे भिन्न हैं, समस्त उपदेशोंका प्रयोजन सब द्रव्योंसे अपनी भिन्नताका सम्वेदन करना है, और इस जीवको शरण और आनंद भी इस भेदविज्ञानसे ही मिलता है।

केवलदृष्टिमें शंकाका अभाव—यह समस्त लोक बहुत बड़ा है, इस लोकमें यह एक अकेला जीव यत्र-तत्र कहाँ-कहाँ भ्रमण कर रहा है, इसका कोई ठौर भी नियत है क्या ? जिस जगह आज यह जीव उत्पन्न हुआ है, क्या उस जगह इस जीवका ठौर है। इस जीवका कोई वैभव नियत है क्या ? जिस समागम और वैभवमें हम आप पड़े हैं, यह हम आपसे बँध गया है क्या ? एक ममत्व परिणाम इस जीवको बेचैन किये जा रहा है। यों जीवको क्लेश एक ममत्वका है, मिथ्यात्वका है, अन्यथा जीवको क्लेश क्या है ? हे सुख चाहने वाले मुमुक्षु जनो, सुख चाहनेके लिए बाहरमें यत्न नहीं करना है। बाहरके समागम तो पुण्य पापके उदयानुसार मिला करते हैं, उसमें तुम्हारे यत्नका कुछ प्राधान्य भी नहीं है, वहाँ तुम्हारा कुछ चल भी नहीं सकता, अपने आपमें अपना अंतः ज्ञानमयी प्रयत्न करें तो सिद्धि होगी। जब कभी यह आत्मा केवल रह जाय, सबसे न्यारा रह जाय, फिर इसमें कोई बाधा है क्या, कोई क्लेश है क्या ? कोई शंका भय है क्या ? वह तो अपने आपके स्वरूपमें केवल ज्ञानमग्न रहकर अपनेको कृतकृत्य कर लेगा।

एकत्वदर्शनका आशय—भैया ! यह प्रोग्राम सोचो यहाँ, हमें तो केवल बनना है। केवल बननेके लिए अभीसे अपने स्वरूपको केवल मानने लगें तो केवल बन जायेंगे। यह आत्मतत्त्व अन्य समस्त द्रव्योंसे भिन्न है। यद्यपि इस लोकमें बड़ा अवगाह हो रहा है। जहाँ मैं हूं वहीं पुद्गल हैं, वहीं धर्म अधर्म हैं, वही आकाश काल हैं, हम कहाँ जायें कि जहाँ केवल हम ही हम रहें और वहां शेष द्रव्य न हों। ऐसा कोई स्थान आपको विदित है क्या ? कहाँ जायेंगे आप ? लोकसे बाहर तो आप जा न सकेंगे। रहेंगे तो लोकमें ही। सर्वत्र जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल पड़े हुए हैं, आकाश तो व्यापक है ही। कौनसी जगह जायें कि आप अकेले रह सकेंगे ? अरे बाहरमें अकेलापन नहीं खोजना है। कहीं रहा आये यह जीव, अपने आपके स्वरूपका कैवल्य देखकर यह अपने आपको अकेला समझे। मैं सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र हूं, निर्लेप केवल ज्ञानमात्र अपने आपकी प्रतीति हो वहाँ शंका नहीं, भय नहीं।

ममत्वका बन्धन—जो मनुष्य दुःखी हैं, शंकित हैं, भयभीत हैं उनके क्लेशका कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
यह है कि बाह्यपरिग्रहोंमें ममत्व परिणाम लग रहा है। जैसे किसी गायको ले जाना है तो उसकी जो छोटी बछिया है उसे आप ले जाइये। अधिक नहीं चल सकती है तो आप उसे गोद में उठाकर चलने लगें तो वह गाय अपने आप पीछे-पीछे भागती है, तो जैसे वह गाय ममता के कारण पराधीन है ऐसे ही ये समस्त संसारी जन ममताके कारण परपदार्थोंके इतने तीव्र आकर्षणमें पराधीन हो गए हैं। इस जगतमें इस जीवके लिए कोई दूसरा सहाय होगा क्या? कोई किसीके दुःखको मिटा देगा क्या? किसी इष्ट वियोग वाले पुरुष या महिलाको समझाने के लिए मित्र जन व नाते रिश्तेदार सभी आते हैं तो वे सब उसके दुःखको मेटनेमें समर्थ हैं क्या? अरे वे कोई भी उसके दुःखको मेटनेमें समर्थ नहीं हैं। वह ही खुद अपने ज्ञानकी संभाल करे तो उसका वह दुःख मिट सकता है। जहाँ उसने इतना ज्ञान बनाया कि इस संसारमें मेरा कहीं कुछ नहीं है, मैं तो अकेला हूं, आज इस भवमें अन्य किसी गतिसे आ गया हूं, यहाँ कौन किसका है, सभी न्यारे-न्यारे जीव हैं, यहाँ किसका शोक करना? यों ज्ञान बनाते ही वे सारे दुःख अपने आप टल जाते हैं।

इक आवत इक जात—एक कविने कहा है, उस स्थितिका चित्रण खींचा है जब कि बसंत ऋतुके आनेका समय होता है, जब पुराने पत्ते झड़ने लगते हैं—"पात गिरंता यों कहे—सुनो वृक्ष बनराय। अबके बिछुड़े कब मिलें दूर पड़ेंगे जाय॥" वृक्षसे बिछुड़ता हुआ पत्ता मानो कह रहा है कि हे बनराज अब हम तुमसे बिछुड़ रहे हैं, न जाने तुमसे बिछुड़कर कहाँ के कहाँ उड़ जायेंगे? अब हम तुमसे कहाँ मिल सकते हैं, कहाँ मिल सकेंगे? तब उत्तरमें वृक्ष कह रहा है—"वृक्षराज यों बोलियो, सुन पत्ता इक बात। या घर या ही रीत है, इक आवत इक जात॥" तब वह वृक्ष कहता है कि अरे पत्ते! एक बात तो सुन ले, तुम इसकी क्या फिक्र करते हो? यह तो इस संसारकी रीति है कि एक आता है तो एक जाता है, एक जाता है तो एक आता है। ऐ पत्ते! यदि तुम हमसे बिछुड़ रहे हो तो दूसरे नये पत्ते तुम्हारी जगहपर आ जायेंगे। तो इस जगतमें किसका शरण ढूंढ़ते हो, यहां कोई सहाय न होगा।

अपनी संभाल—भैया! यह संसार अशरण है, इस अशरण संसारमें अपने आपकी जिम्मेदारी संभालनी होगी। भेदविज्ञान करके सर्वसे भिन्न अपने आपके स्वरूपका प्रतिबोध करना और अपनेको केवल रखकर अपने ज्ञान और आनन्द स्वरूपसे तृप्त बने रहना, यही है अपनी संभाल। मैं समस्त द्रव्योंसे भिन्न हूं। यद्यपि जहाँ मैं हूं वहाँ सभी द्रव्य हैं, फिर भी मेरे स्वरूपमें किसी अन्य द्रव्यका प्रवेश नहीं हैं तथा कभी भी मैं अपना गुण अथवा पर्याय किसी द्रव्यको देनेमें समर्थ नहीं हूं। हूं मैं यहाँ लोकमें और इसी लोकमें है सभी पदार्थ। रहने दो, जान लिया इन सब परपदार्थोंको। समस्त पदार्थोंका जो समूह है इस समूहका नाम लोक है, किन्तु आकाश अनन्त है, वह लोकमें भी वही है और लोकके बाहर भी वही है

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थात् आकाश जो लोकरूपसे है लोकसे बाहर नहीं है और बाहर है जो वह केवलरूपसे है। इस प्रकार इस गाथामें लोकसे बाहर यह आकाश है, अखण्ड असीम, इसकी प्ररूपणा की गई है। आकाशद्रव्य नित्य शुद्ध है। इसकी चर्चामें विषयप्रवृत्तिका अवकाश नहीं है। विषय-वासनासे दूर रहना आत्मकल्याण ही तो है।

आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥९२॥

गतिस्थितिका कारण आकाशको माननेकी आशंका—इस प्रकरणमें एक यह शंका की जा सकती है कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यको इनकी गति और स्थितिका कारण कहा है। हमें तो यही आकाश जीव और पुद्गलोंके गमनका और ठहरानेका कारण मालूम होता है। देखिये यह शंका बहुत कुछ जंच सकने वाली हो रही है। दुनियाको ऐसा ही मालूम पड़ रहा है कि यह आकाश है। इसमें पदार्थ गमन करते हैं, इसमें ही ठहरते हैं, गमन करना चाहें तो गमन कर लें, ठहरना चाहें तो ठहर लें, इस गमन करने और ठहराने दोनोंका कारण यह आकाश है। सो आकाशको गति और स्थितिका कारण बताना चाहिये। धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्यके माननेकी क्या जरूरत है? इस ही शंकाके समाधानमें यह गाथा कही जा रही है।

आकाशमें गतिस्थितिहेतुता माननेपर अनिष्टप्रसंग—यदि आकाश नामका द्रव्य गति और स्थितिके कारणभूत धर्म अधर्मद्रव्यके उपग्रहकी बात करने लगे, तो ऊर्द्ध गति वाले सिद्ध जो जीव हैं वे सिद्ध क्षेत्रपर ही क्यों ठहर जाते? इसका कारण बतावो धर्मद्रव्य और अधर्म-द्रव्य तो माना नहीं, ऐसी स्थितिमें आकाश तो है असीम अनन्त, फिर तो ये चलते ही रहें, ठहरनेकी कहीं नौबत ही क्यों आये? यह शंका समाधानकी दृष्टिमें नई नहीं है, मगर शंका रखनेकी शैली नई है। यदि यह आकाश ही अवकाशमें आने वाले अवगाहका कारणभूत जिस प्रकार है उस प्रकार गमन और ठहरने वाले पदार्थोंके गमन और ठहरनेका कारण भी हो जाय तब सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक ऊर्द्ध गतिसे परिणत हुए भगवान सिद्ध लोकके अंतमें ही क्यों ठहरते हैं अथवा फिर तो एक भगवान् सिद्धकी ही क्या बात रही, सभी पदार्थ फिर एक सीमा तक ही क्यों पाये जाते हैं, क्रियावान पदार्थ तो इससे आगे भी चले जायें ना। क्यों यहीं रह गये? यह दूषण आता है।

दोषापत्ति देकर समाधान—कभी शंकाकार समाधान देता है, आपत्ति देकर भी और फिर उस दोषापत्तिके बाद स्थितिपक्ष रक्खा जाता है। शंकाकारने यह शंका की थी कि धर्म-द्रव्य अधर्मद्रव्य माननेकी कुछ जरूरत नहीं है, क्योंकि जीव और पुद्गलकी गति एवं स्थिति का कारण आकाशद्रव्य है। उसके उत्तरमें यह कहा गया कि यदि आकाश ही गमन करने और ठहरनेका कारण होता तो आकाश तो सर्वत्र है, जीव व पुद्गल सर्वत्र क्यों नहीं चले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
जाते ? उनकी गतिमें तो रुकावट न होनी चाहिए थी।

समाधानमें सिद्धोंका उदाहरण देनेका कारण—भैया ! कोई अन्य पदार्थोंके लिए कुछ और बहाना ला सकते हैं। ये पुद्गल पिण्डरूप हैं, इनको इससे ऊपर जाने योग्य वातावरण नहीं मिलता, नहीं जा सकते। संसारी जीवोंके भी इस तरहके कर्म नहीं हैं, ये अशक्त हैं, ये नहीं जा सकते। अन्य द्रव्योंमें कुछ बहाना लाया जा सकता है, किन्तु जो शरीरसे कर्मों से मुक्त हो गए हैं, जिनमें स्वाभाविक ऊर्द्ध गमनका स्वभाव व्यक्त हो गया है उन सिद्ध भगवानके चलते ही रहनेमें कोई बहाना नहीं मिल सकता। इस कारण दोषापत्ति देते समय भगवान सिद्धका ही दृष्टान्त दिया है कि यदि धर्म अधर्मद्रव्य न होते तो भगवान सिद्ध निरन्तर आगे चलते ही रहते। ठहरनेका तो वहाँ कोई काम ही न था। क्योंकि सिद्धोंमें तो विशुद्ध ऊर्द्धगमन स्वभाव है ही, इससे बात क्या सिद्ध हुई। उस सिद्ध की जाने वाली बातको अगली गाथामें रख रहे हैं।

जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥६३॥

गतिस्थितिहेतुताका युक्तिपूर्वक सिद्धान्तका प्ररूपण—सिद्ध भगवानका स्थान जिनवर भगवानने लोकके शिखर पर बताया है। इस कारण गमनक्रियामें हेतुभूत आकाशद्रव्यको नहीं कहा जा सकता। बहुत-बहुत वर्णन हो गया है कि सिद्ध भगवान लोकके शिखरपर बिराजमान हैं, अब आगे क्यों नहीं गए ? गमनका बहिरङ्ग कारणभूत जो कुछ भी है वह आगे नहीं है, इस कारण आकाशको गतिका हेतुभूत नहीं कहा जा सकता। गतिका हेतुभूत धर्मद्रव्य ही है। और धर्मास्तिकायका अभाव होने से वे वहीं रुक गए। भगवान जहाँसे मुक्त हुए हैं वहाँसे जाते तो अवश्य हैं ऊपर, पर वे लोकके ऊपर ही अवस्थित हैं। इससे यह पूर्ण सिद्ध है कि गति और स्थितिका हेतुपना आकाशमें नहीं है। लोक और अलोक इस विभागके करने वाले धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही हैं। ये ही जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिके कारण होते हैं। भगवान सिद्धका यहाँ उदाहरण लिया है।

सिद्धता—सिद्ध मायने जो एक विलक्षण पक गया है अथवा अनुपम अवस्थाको प्राप्त हो गया है। लोकसिद्ध तो बहुतसी बातें हैं। कोई अञ्जनसिद्ध होता है जिस अञ्जनको लगा ले तो सारा शरीर अन्तर्ध्यान हो जाता है। कोई पादुकासिद्ध होता है, कोई खड़ाऊ सिद्ध हो जाती जिसको पहिनकर तालाबमें जलके ऊपर-ऊपर गमन हो सकता है। किसीको गुटका सिद्ध हो गया, किसी को खड्गादिक शस्त्र सिद्ध हो गये। लौकिक बातें तो बहुतसी हैं मगर उन सबसे विलक्षण ये सिद्ध भगवंत हैं, जिसमें सम्यक्त्व आदिक अष्टगुण प्रकट हो गए हैं उन सिद्धोंकी बात कह रहे हैं, उनका ऊर्द्धगमन स्वभाव है। और वे जहाँ भी जायें ऊपर

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक ही समयमें पहुंच जाते हैं। सिद्ध भगवन्तोंका निवास लोकके अग्रभागपर है, उससे आगे नहीं है। इस अन्तराधिकारमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सिद्धि गति स्थितिके हेतुरूपमें हुई है। आकाशद्रव्य तो पदार्थोंके अवगाहका ही कारणभूत है। इन सब द्रव्योंकी चर्चा करके हमें शिक्षा यही ग्रहण करना है—यह मैं जीवद्रव्य इन सब मिले हुए समस्त पदार्थोंसे न्यारा केवल ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, इस प्रतीतिसे ही कल्याणका मार्ग मिलता है।

जदि हवदि गमणहेदू आयासं ठाणकारणं तेसिं।
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी ॥६४॥

आकाशमें गतिस्थिति कारणता माननेपर आपत्ति—आकाश जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका कारण क्यों नहीं है ? इस सम्बंधमें फिर भी और युक्ति देते हैं। यदि आकाश जीव पुद्गलकी गतिका कारण होता और स्थितिका कारण होता तो एक तो यह दोष है कि अलोकाकाश कुछ कहलाता ही नहीं। दूसरे लोकाकाशके अन्तकी वृद्धि हो जाती। लोकाकाश तो बहुत बड़ा हो जाता और बड़ा क्या असीम हो जाता और अलोकाकाश रहता ही नहीं। इससे यह समझना कि आकाश जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका हेतु नहीं है, क्योंकि अन्यथा लोक और अलोककी सीमाकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

अनुमानज्ञानकी प्रमाणता—लोग अनुमानज्ञानको एक कमजोर ज्ञानकी दृष्टिसे देखते हैं। जैसे बोलने लगते कि हाँ पता नहीं कि क्या बात है, अनुमानकी बात है। लोग अनुमान ज्ञानको कुछ अशक्त दृष्टिसे देखा करते हैं, लेकिन अनुमानज्ञानको उतना ही प्रबल प्रमाण कहा गया है जितना प्रबल सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञानप्रमाण होता है। न्यायशास्त्रमें अनुमानके अंग ५ कहे हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। जैसे बोलें कि इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए, क्योंकि अन्यथा धुवां होना न पाया जा सकता था। धुवां देखो पर्वतमें से उठता हो तो अनुमानज्ञान बनाया कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे। जहाँ-जहाँ धुवां होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, जहाँ अग्नि नहीं होती है वहां धुवां नहीं होता है। इसमें पहली व्याप्तिका उदाहरण है रसोईघर। वहाँ धुवां है तो अग्नि भी है। दूसरी व्याप्तिका उदाहरण है तालाब। वहाँ अग्नि नहीं है तो धुवां भी नहीं है। और इस पर्वतमें धुवां देखा जा रहा है, इससे सिद्ध है कि यहां अग्नि अवश्य है। इस ज्ञानमें शककी बात है या दृढ़ताकी बात है ? दृढ़ताकी बात है। लोकमें प्रसिद्धि है कि अनुमानज्ञान शंका वाली बातमें किया जाता है, किन्तु ऐसा नहीं है। अनुमानज्ञान उतना ही दृढ़ प्रमाण है परोक्षप्रमाणमें जितना मति स्मृति आदिक हैं।

आकाशमें गतिस्थितिहेतुता माननेपर हुई दोषापत्तिका विवरण—यहां अनुमानज्ञानसे यह सिद्ध कर रहे हैं कि आकाश जीवपुद्गलके चलनेमें कारण नहीं है, ठहरनेमें कारण नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। अन्यथा लोक और अलोककी सीमाकी व्यवस्था नहीं बन सकती। मान लो कदाचित् आकाश जीव पुद्गलके चलनेका कारण है तो इसे कहां तक चलना चाहिए था? जहां तक आकाश मिले। और आकाश सर्वत्र है तब फिर जीव और पुद्गलकी गति निःसीम हो जायगी, और वे चलते-चलते रुकेंगे, फिर चलेंगे, फिर रुकेंगे, ऐसी भी बात बनती रहेगी तो रुकना भी अलोकमें हो जायगा, चलना भी अलोकमें हो जायगा। तब होगा क्या कि चलना तो हो ही रहा है और रुकना हो रहा है तब फिर अलोक क्या रहा?

उपग्रहका निर्णय—आकाशको जीवपुद्गलकी गति स्थितिमें निमित्त माननेपर दो दोष ये होते हैं—एक तो अलोकाकाशका अभाव हो जायगा और दूसरे लोकाकाशकी वृद्धि हो जायगी। इससे यह सिद्ध है कि आकाशद्रव्यका काम मात्र अवगाह देना है और यह भी धर्म अधर्मद्रव्यकी तरह उदासीन निमित्त है, जो ठहरे तो ठहर जाय, जो चले तो चला जाय। यों आकाशद्रव्य अवगाह देनेके लिए है। इस बातकी यहां सिद्धि की है। अब आकाशद्रव्यके सम्बंधमें इस ही प्रकरणको उपसंहारात्मक रूपसे पुनः कह रहे हैं।

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं।
इदि जिण वरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥६५॥

गतिस्थितिहेतुताके सम्बन्धमें सिद्धान्त—इससे यह निर्णय करना कि धर्म और अधर्मद्रव्य ही जीव पुद्गलके चलनेमें और ठहरनेमें कारण है, आकाश नहीं है, ऐसा जिनेन्द्र-भगवानने कहा है। जो लोकके स्वरूपको श्रोता हैं उन श्रोतावोंको यह बताया है कि अमूर्त पदार्थोंमें चलने और ठहरनेका निमित्त धर्म और अधर्मद्रव्य हैं और अवगाहका निमित्त आकाश-द्रव्य है। यह अति सूक्ष्म चर्चा है और आंखों दिखने वाली बात नहीं है, खुदपर बीतने वाली बात नहीं है, इसलिए इसमें दिलचस्पी नहीं आ पाती है। अनुरंजकता दो प्रसंगोंमें आती है या तो दिखने वाली बातमें कोई घटना हो रही हो अर्थात् पुद्गलके सम्बंधमें और एक खुद पर बीती चर्चा हो तो चूंकि बहुत कुछ अनुभूत है तो इस कारणसे वहांपर एक दिल टिकता है। इसी प्रकार यद्यपि यहां कोई दिल जल्दीसे लगना योग्य विषय नहीं है, फिर भी शुद्ध द्रव्यकी चर्चासे विषयकषायोंमें अन्तर आ जाता है। विषयकषायोंकी वृद्धि वहां होती है जहां विषयकषायोंके साधनभूत पुद्गलपिण्डोंको विषयमें लिया जाय।

अमूर्त अजीवास्तिकायकी चर्चा—यह एक शुद्ध चर्चा है। लोकाकाश प्रमाण धर्मद्रव्य है और अधर्मद्रव्य है। आकाश असीम है, वह लोकरूप भी है और लोकसे बाहर भी है। यहां तक ५ अस्तिकायोंके वर्णनके प्रसंगमें इस अधिकारमें पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश चार द्रव्योंका वर्णन किया, जिसमें अमूर्त द्रव्य तीन हैं—धर्म, अधर्म और आकाश। ये तीनों द्रव्य एक जगह रह रहे हैं, फिर भी वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे ये जुदे-जुदे हैं, इस प्रकारका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वर्णन करते हैं।

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समानपरिणामा।
पुधगुवलद्धिविसेसा करंति एगत्तमण्णत्तं ॥९६॥

धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य व आकाशद्रव्यकी एकता व अन्यता—धर्म, अधर्म और लोकाकाश ये समान परिमाण वाले हैं। जहां तक सब द्रव्य हैं उतनेका नाम लोकाकाश है। जितना बड़ा लोकाकाश है उतना ही बड़ा धर्मद्रव्य है, उतना ही बड़ा अधर्मद्रव्य है। नापकी दृष्टिसे देखो तो तीनों एक बराबर हैं, अमूर्तस्वभावकी दृष्टिसे देखो तो वे तीनों एक बराबर हैं। सम्पूर्ण एकक्षेत्रावगाही व अमूर्तस्वभावी होनेसे एकत्वको प्राप्त होनेपर भी ये वास्तवमें अपने-अपने रूपको लिए हुए हैं और पृथक्-पृथक् अपना सत्त्व रखते हैं। व्यवहारदृष्टिसे, स्थूल दृष्टिसे समान परिणाम होनेके कारण और एक ही जगह रहनेके कारण इनमें एक समानपना पाया जा रहा है, लेकिन वास्तविक दृष्टिसे इनका स्वरूप न्यारा-न्यारा है। धर्मद्रव्य तो गतिका कारण है, अधर्मद्रव्य स्थितिका कारण है, आकाशद्रव्य अवगाहका कारण है और इनका प्रदेश भी विभक्त है।

एकता व अन्यतापर एक स्थूल उदाहरण—जैसे एक ही घरमें १० आदमी रह रहे हैं, पर उन दसोंका परस्परमें एकका किसीसे मन नहीं मिलता तो जैसे यह कहा करते हैं कि एक घरमें रहते हुए भी ये सब न्यारे-न्यारे ही हैं, मन ही नहीं मिलता। यह एक मोटी बात कही जा रही है। ऐसे ही ये धर्म अधर्म लोकाकाश एक प्रमाण वाले हैं। एक ही जगह रह रहे हैं परिवारके आदमी फिर भी एक जगह नहीं हैं। उनका शरीर न्यारा है, क्षेत्र न्यारा है, पर यहाँ तो ये तीन अमूर्त पदार्थ एक जगह रह रहे हैं, फिर भी किसीका स्वरूप किसीसे मिलता नहीं है। जैसे पानीमें मिट्टीका तेल डाल दिया तो एक जगह होकर भी वह पानी अपने ही स्वभावको लिए हुए है, तेल अपने स्वभावको लिए हुए है। मन नहीं मिलता अर्थात् उनका स्वरूप नहीं मिलता तो यों ये तीन द्रव्य विभक्तप्रदेशी हैं और विशेष रूपसे पृथक् उपलब्ध हैं, इस कारण ये जुदे-जुदे ही हैं।

एकता व भिन्नता बतानेका हितकारी तात्पर्य—इसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे यह जीवद्रव्य पुद्गल आदिक ५ द्रव्योंके साथ और शेष अन्य जीवोंके साथ एकक्षेत्रावगाह रूपसे रहता है यों व्यवहारसे यहाँ एकत्व समझमें आ रहा है, फिर भी निश्चयसे सबके अपने-अपने धर्म जुदे-जुदे हैं अतएव उन सबसे मैं भिन्न हूं। देखिये यहीं की बात, आप जितनेमें फैले हैं, जितनेमें चेतना प्रकाश है, ज्ञानभाव है उतनेमें आप हैं ना? उस क्षेत्रमें ही यह शरीर है, उसी क्षेत्रमें धर्मद्रव्य है, आकाशद्रव्य है, और आपके शरीरमें जो असंख्याते जीव बस रहे हैं और असंख्याते जीवोंकी ही बात क्या, इस शरीरमें निगोद जीव भी बस सकते हैं, तो अनन्त जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी उसी जगहमें अवगाह लिए हुए हैं, किन्तु पैरमें जो कीड़े फिर रहे हैं उन कीड़ोंकी संज्ञा, उन कीड़ोंका उपयोग, उन कीड़ोंकी प्रवृत्ति कीड़ों जैसी है। आपकी संज्ञा, आपका विचार, आपका मन आपमें आपकी तरह है, भिन्न-भिन्न स्वरूपको लिए हुए है। यह एक क्षेत्रावगाही जीवोंकी बात है।

जीवोंकी परस्पर भिन्नता—भैया! परिवारमें तो सभी प्रकट भिन्न नजर आते हैं। यह इस शरीरमें रहने वाला मैं, यहाँ दूसरे शरीरमें रहने वाले दूसरे जीव, यों भिन्न-भिन्न शरीरोंमें रहने वाले ये भिन्न-भिन्न जीव हैं। आपको थोड़ा फुंसी हो तो आप ही उसकी वेदना को सहेंगे। दूसरा कोई प्रेमी हो तो चूंकि आपको विषयभूत बनाकर उसने रागपरिणमन उत्पन्न किया तो वह अपने रागपरिणमनसे दुःखी होगा, न कि आपकी फोड़ा फुंसीके निमित्तसे। उसका क्लेश तो आपको ही भोगना पड़ेगा, कोई दूसरा नहीं भोग सकता। प्रत्येक जीव अत्यन्त न्यारा है।

अपूर्व लाभका अवसर—देखिये जैनधर्मका लाभ लूटनेका यह ही मौका है। यह संसार विषम है। आज मनुष्य है, कलका कुछ पता नहीं कि किस गतिमें पहुंच जायेंगे, फिर क्या होगा, कब चेतना बनेगा? सोच लीजिए। इस भवमें यदि धर्म और ज्ञानके लिए वर्द्धमान परिणाम हो रहे हैं तब तो संतोषकी बात है। यदि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में वर्द्धमान भाव नहीं होता है तो एक बड़े खेदकी बात है। आज मनुष्य हैं, कुछ अच्छे समागम मिले हैं, जैसा चाहे मनको स्वच्छन्द बना लें, क्योंकि प्रभुता कुछ पायी है इस समय, लेकिन यह संसार तो अतिविषम है। जीव लोकपर दृष्टि डालकर देखिये, केवल यहाँके थोड़ेसे वैभव और थोड़ेसे सुखमें क्या तत्त्व बसा है? ऐसा उपाय बनावो कि यह आत्मा अपने स्वरूप का ज्ञान श्रद्धान और आचरण करके सदाके लिए संसारके संकटोंसे मुक्त हो सके, ऐसा उपयोग बनाना चाहिए, इसीमें बड़प्पन है। धन बढ़ा लिया तो इससे कुछ बड़प्पन नहीं है। परिवार को योग्य बना लिया अथवा वे बुद्धिमान हो गए तो इससे भी आत्माका कुछ बड़प्पन नहीं है। आतमाका बड़प्पन तो रत्नत्रयकी सिद्धि करना ही है। अपने आपका केवल यथावत् निश्चय हो जाय और इस ही रूपमें अपनेको लेते रहनेका परिणाम हो जाय तो यही एकमात्र शरण है।

मोहान्धकार—यहाँ अन्य कुछ भी शरण नहीं है, सब असार है। घरके चार छः जीवोंमें रमनेका तो भाव रहे और पड़ौसियोंके या गाँवके किसी भी मनुष्यमें कुछ चित्त भी नहीं जाता, उनपर कुछ दयाकी बुद्धि ही नहीं जाती तो इसको कम विपदा न मानो। अरे जब तक ऐसी बात मनमें न आये कि जीव-जीव तो सब एक समान हैं, स्वरूप तो सबका एक सा है। न्यारेकी दृष्टिसे देखो तो जितने न्यारे गैरको देखते हो उतने ही न्यारे घरके लोगोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी मानो, ऐसी झलक यदि कभी आती नहीं है तो समझो कि हमपर बड़ी विपदा है। यह अज्ञानका घोर अंधकार है।

अन्तर्ज्ञानमें अनाकुलता—भैया ! जिस उपायसे सम्यक्त्व जगे, सम्मग्ज्ञानकी स्थिरता रहे, बस यही मात्र एक उपाय सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है, और कुछ नहीं। आज जैसे कुछ डर लग रहा है, अचानक न जाने क्या हो जाय ? जो भी वैभव है वह आपके हाथ न रहे। स्थितियां तो भयंकर हैं। जो परिजन हैं वे न रहें ऐसी शंकायें रखते हैं ना ? ठीक है। यह तो हुई बाह्य व्यवस्था और एक होता है अंतरङ्गका अज्ञान — इन दो में तो महान् अंतर है। अंतरङ्ग में जो अज्ञान बसा हुआ है तो इसकी घबड़ाहट है और अंतरङ्गमें अज्ञान नहीं बसा है, सम्यग्ज्ञान बन रहा है तो अन्तरङ्गमें अनाकुलता रहते हुए भी ये बाह्य व्यवस्थाएँ बना सकते हैं।

उपदेशका प्रयोजन—जितने उद्देश्य हैं उन समस्त उपदेशोंका सार इतना है कि यह ज्ञानमें आ जाय कि जीव जुदा है और यह पुद्गल जुदा है। मेरा विनाश मेरे जीवपरिणामोंमें मलिनता कलुषता आनेसे होगा। किन्हीं बाह्यपदार्थोंके नष्ट होनेसे मेरा विनाश न होगा, और यह विनाश भी क्या है ? सत्तासे विनाशकी बात यहाँ भी नहीं है, किन्तु हम आनन्दरूपमें न रह सकें, क्षोभरूप प्रवृत्तिमें रहा करें, यह हमारी बरबादी है, ऐसी बरबादी हममें तभी होती है जब हम अपने आपमें मलिन परिणाम किया करते हैं। अन्तरङ्गमें मलिनता न जगे, यही एक हमारा सच्चा बड़प्पन है और यही सच्ची विभूति है।

प्राप्त क्षयोपशम—भैया ! इस जीवका जो विकास होता है उस विकासमें सबसे पहिले तो क्षयोपशमकी जरूरत होती है, क्षयोपशमलब्धिकी जरूरत है। तो क्षयोपशमलब्धि तो हम आपको मिल चुकी है। हम आपमें इतना ज्ञान है कि जिस बातका निर्णय करना चाहें निर्णय कर लेते हैं। जिस बुद्धिमें इतनी सामर्थ्य है कि बड़ी-बड़ी लौकिक व्यवस्थावोंकी व्यवस्थाएँ हल कर लें, बड़ी ऊँची समस्याएँ सुलझा लें। उस ज्ञानमें क्या इतनी योग्यता नहीं है कि इस ज्ञाताको पहिचानने चलें तो पहिचान लें। केवल एक रागका आवरण पड़ा है, इस कारणसे हम अपने आत्माका सीधा सही परिचय न कर पायें, लेकिन योग्यता हम आप सबमें आ चुकी है कि आत्मपरिचय कर लें। तो योग्य क्षयोपशम हम आपके है।

विशुद्धि व उपदेशग्रहणयोग्यता—देखिये विशुद्धि भी हम आपमें अनेक अंशोंमें आ चुकी है। बहुत क्रूरता भी नहीं है, बहुत लम्पटता भी नहीं है। धर्मका भी ख्याल रहता है और धर्मके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेका भी भाव रखते हैं, विशुद्धि भी बराबर मिली हुई है, उपदेश भी बहुत मिले हुए हैं। उपदेशोंसे भरे हुए ये अनेक ग्रन्थराज मिले हैं, जिनमें इनके समझनेकी शक्ति है वे इन्हें पढ़कर उपदेशका ही तो लाभ लेते रहते हैं, और इनको जानने वाले जो बतायें वह भी उपदेश है। तो उपदेश पानेकी भी सुविधा मिली है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और उस उपदेशको ग्रहण करनेकी भी योग्यता मिली है। अब जरूरत तो मननकी है। इस अपने आपमें तत्त्वविषयक मनन बनायें। मैं क्या हूं, ये अन्य पदार्थ क्या हैं, इनसे मेरा क्या सम्बंध है? बाह्यपदार्थोंका संगम मेरा कहाँ तक पूरा पाड़ेगा, किसमें मेरा हित है? इस बात पर ध्यान दीजिए।

मनन व भेदविज्ञानका यत्न—यह सब वक्तव्य एक भेदविज्ञानके लिए है। तो अब यहाँ जो कुछ तत्त्वके विषयमें ज्ञान बनाया वह ज्ञान वस्तुस्वरूपके माफिक है, लेकिन जिस क्षणमें परके विकल्प टूटकर अपने आपके स्वरूपमें उपयोग समायेगा, श्रद्धान होगा, अनुभव होगा तब यही सब ज्ञान सम्यग्ज्ञान बन जायगा। फिर सम्यग्ज्ञान बननेके बाद ही पूर्वकालकी वासना परेशान करती है, पुनः पुनः अपने आपमें शिथिलता आती है। बाह्यमें उपयोग चलता है तो उस बाह्य उपयोगकी निवृत्तिके लिए बार-बार भेदविज्ञानका प्रयोग करना चाहिए, भेद-विज्ञानकी भावना भानी चाहिए। सम्यक्त्व हो जानेके बाद भेदविज्ञानकी भावनाकी आवश्य-कता नहीं हो, ऐसा नहीं है। सम्यक्त्व होनेपर भी जब तक यह ज्ञान ज्ञानमें प्रतिष्ठित न हो जाय, अपने स्वरूपमें न समा जाय, जब तक विकल्प रहें तब तक इस भेदविज्ञानकी भावना करनी चाहिए।

अभेदानुभूतिका पुरुषार्थ—जब इस भेदविज्ञानकी भावनाका दृढ़ अभ्यास हो जायगा तब बाह्यसे उपेक्षा करके अभेद निज चैतन्यस्वभावमें स्थिर होनेकी विशेषता होनी चाहिए। तब यह कदम होगा अभेदानुभूतिका। इस अभेदानुभूतिसे जो आनन्द प्रकट होता है उस आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि रागादिक विभावोंका विनाश करे और द्रव्यकर्म कलंकोंका भी नाश करनेमें निमित्त बने। यों सत्य आनन्द पानेके लिए ही धर्मका पालन होता है। कष्ट सहनेके लिए धर्मका पालन नहीं किया जाता। यों इस सहज परम विशुद्ध स्वाधीन आनन्दकी प्राप्तिके लिए आनंदधाम निज चैतन्यस्वरूपका अनुभव करना चाहिए, और यह सब होगा ज्ञान द्वारा साध्य। इससे अपने इस जीवनको ज्ञानार्जनमें लगाकर उस ज्ञानामृतसे सींचकर सफल कीजियेगा। जैनशासनका अनुपम लाभ लूटनेका यही मौका है। मौका चूक जानेपर अर्थात् विषयकषायोंकी मलिनतासे अपने आपके जीवनको बिगाड़ लेनेपर फिर इस जीवपर क्या बीतेगी, वह बहुत कठिन बात होगी। यहाँ इन ५ अस्तिकायोंका वर्णन किया गया है। अब इस चूलिकामें अन्य बातें कही जायेंगी।

आगासकालजीवा धम्माधम्माय मुत्ति परिहीणा।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥९७॥

चूलिकामें द्रव्योंके विभागका प्रतिपादन—आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य—ये ५ द्रव्य मूर्तिकतासे रहित हैं अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्शसे शून्य हैं। एक पुद्गल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य ही मूर्तिक है और इस परिस्थितिमें उपाधिके सम्बंधसे, उपचारसे जीव भी मूर्त कहलाता है। इन सब पदार्थोंमें से चेतन केवल जीव है। यह उस अधिकारकी चूलिका चल रही है। चूलिकाका अर्थ है जो कहा हो, उसमें जो कुछ अंश छूट गया हो उसे कहना। उससे सम्बंधित कुछ और कहना हो उसे कह देना, इसको चूलिका कहते हैं। जैसे आप किसी अपने मित्रसे या किसीसे भी एक-आध घंटा बातें करते हैं तो बातें कर चुकनेके बाद जब आप उससे विदा होते हैं तो चूलिकारूपमें कुछ लगारकी बात कहकर जाया करते हैं वह उस प्रसंगकी चूलिका है, कही हुई बात भी कहना व न कही हुई बात भी कहना। यहाँ द्रव्योंमें मूर्तद्रव्य कौन है, अमूर्तद्रव्य कौन है, चेतन कौन है, अचेतन कौन है ? इसका वर्णन किया गया है।

द्रव्योंमें मूर्त व अमूर्तका विभाग—मूर्त कहते हैं उसे जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके सद्भावका स्वभाव हो। तब निरख डालिये—६ द्रव्योंमें से किस द्रव्यमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है ? केवल पुद्गलमें पाया जाता है यह मूर्तिकपना और जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके अभावका स्वभाव पाया जाय उसे अमूर्त कहते हैं। तो निरख डालो, किन-किन द्रव्योंमें ऐसा स्वभाव है कि त्रिकाल भी जिनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण न हो सकें। इनके अभावका स्वभाव जिसमें पाया जाय वह अमूर्त पदार्थ है। ऐसे अमूर्त पदार्थ आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म ये ५ हैं।

द्रव्योंमें चेतन और अचेतनका विभाग—अब चेतन और अचेतनका विभाग सुनिये। जिसमें चेतनके सद्भावका स्वभाव पाया जाय वह द्रव्य है चेतन। अब निरख डालो, किस द्रव्यमें चेतनके सद्भावका स्वभाव पाया जाता है ? एक जीवद्रव्यमें। जो प्रतिभासनेका काम करे, जिसमें जानकारी बने वही तो चेतनास्वभावके सद्भाव वाला पदार्थ है, वह केवल जीव-द्रव्य है। देखो जिसमें आनन्द भरा हुआ है उसमें हो दुःखकी नौबत आती है। शेष ५ द्रव्यों में सत्ता तो उनके है, पर सत्ता होकर न उनके आनन्द है, न उनके दुःख है। हम आप सोचें कि हम जीव सत् ही क्यों हुए ? हम पुद्गल, धर्म, अधर्म आदिक इन सत्‌रूप होते तो भला था। अब सोचनेसे क्या होता है ? तुम तो जीव ही सत् हो। अब जैसे तुम्हारा गुजारा बने, निपटारा बने उस कामका यत्न करो।

जीवका प्रबल बैरी—इस जीवका प्रबल बैरी घातक मोहभाव है, जो कि व्यर्थका मोहभाव है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो यह आत्मा अकेला ही है, अनादिकालसे अकेला ही रहा आया है व अनन्तकाल तक अकेला ही रहेगा। वर्तमानमें भी पूर्ण अकेला है। इसमें दूसरे पदार्थका संग भी नहीं है। यह मेरा है, ऐसा सोचना यही एक बड़ी विपदा है। परिस्थितिवश जो काम करना हो, जो काम किया जाता हो वह काम कर लेवे वह उतना बुरा नहीं है, पर 'यह मेरा है' इस प्रकारकी जो भीतरमें प्रतीति है यही है जीवकी प्रबल बैरी।

Version 1

ज्ञानप्रकाशकी विशेषता—कोई यों भी अपनी सफाई पेश कर सकता है कि साहब हम तो सम्यग्दृष्टि हैं, हमारे किसी द्रव्यमें ममता नहीं है, मोह नहीं है। गृहस्थी है इसलिए यह सब निभाना पड़ता है। ऐसी बात हो सकती है, पर ऐसी सफाई देने वाली संख्या अधिक हो सकती है। यदि अन्तः यह श्रद्धा बन गयी है, भेदविज्ञान हो तो उसके फलमें उदारताका परिणाम भी व्यक्त हुआ ही करता है। उदारताका परिणाम न हो, व्यवहारमें त्यागकी कुछ बात भी न चलती हो और वह भी एक बेअटक दिलसे तब यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे भीतर निर्मोहताकी परिणति बनी हुई है। जब मेरे एक आत्मस्वरूपसे सब कुछ न्यारा है, यह प्रकाश हो तब यह प्रकाश तो अपने प्रकाशके अनुरूप ही काम करेगा।

जगतकी असाररूपता—इस जगतमें सारभूत पदार्थ बाह्यमें कुछ नहीं है। थोड़ी देर के लिए किसीने अच्छा बोल बोल दिया, कुछ अपना प्रेम दर्शाया, कुछ सुहावना भी लगा, लेकिन कितने दिनकी बात है, और प्रथम तो यही बात है कि यह इसका प्रेम आजके लिए है, कलका कुछ भी ठेका नहीं है कि कैसा चित्त बने? पति-पत्नी, पिता-पुत्र सभीका कोई विश्वास नहीं है कि कब तक प्रेम रहे? यों तो एक विश्वास और कल्पनाके आधारपर व्यवहारके बड़े-बड़े काम भी चल रहे हैं। यदि एक भीतरमें छल आ जाय तो आपको २०) रु० का मनीआर्डर भी वसूल करना कठिन हो जायगा। डाकिया कहेगा कि पहिले दस्तखत करो, आप कहेंगे कि पहिले रुपये दो, लेकिन विश्वासके आधारपर यह सब कुछ सधा हुआ है, टिका हुआ है। यों ही विश्वासके आधारपर आप अपने परिजनोंको कहते हैं कि ये मेरे हैं, इनपर मेरा अधिकार है, ये आजीवन मेरे अनुकूल रहेंगे, लेकिन दम भरकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

अचेतन पदार्थ और व्यामोहीकी प्रकृति—यह जीव चेतन है, इसमें चैतन्यके सद्भाव का स्वभाव पाया जाता है, किन्तु जिसमें चेतनके अभावका स्वभाव पाया जाय उसे अचेतन कहते हैं। यह भी देख लीजिए। कौन-कौनसे द्रव्य अचेतन हैं? एक जीवद्रव्यको छोड़कर शेष ५ द्रव्य अचेतन हैं। यह जीव चेतन पदार्थमें भी व्यामोह करता है और अचेतन पदार्थमें भी व्यामोह करता है। और बात तो दूर रहो, किसी समय कोई पुरुष धर्म अधर्मद्रव्य जैसा सूक्ष्म अमूर्त पदार्थकी चर्चा कर रहा हो तो उसके खिलाफ कुछ अन्य प्रकारसे स्वरूप बताने वाला कोई दूसरा विवाद करने लगे तो अमूर्त धर्मद्रव्यकी चर्चाके विवादके प्रसंगमें भी गाली-गलौज और झगड़े भी हो सकते हैं। यह विडम्बना धर्मद्रव्यके मोहमें हुई है। देखिये—जो दिखता नहीं है, जिसकी हम स्पष्ट सिद्धि भी नहीं कर सकते, प्रत्यक्ष दिखा भी नहीं सकते, केवल आगमके आधारपर जानकर हम चर्चा कर रहे हैं और उसकी चर्चाके विकल्पमें ही मेरा-तेरा लगा है। कितना व्यामोह घुसा हुआ है इस संसारी प्राणीमें?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवका विकार व विकारकी अपनायत—यह व्यामोही प्राणी अचेतनसे भी मोह करे, चेतनसे भी मोह करे, और अपने आपके चेतनमें बसे हुए जो चिदाभास विकल्प वितर्क विचार रागादिक भाव हैं उनसे भी मोह करता है। जो मैं कहता हूं सो ठीक है, यह भी मोहकी बात है कि नहीं? जो उसका विकल्प है, जो उसका विचार है उसे ठीक कह रहा है। अरे यह मालूम है कि जितने भी विचार हैं, जितने भी विकल्प हैं ये सब परभाव हैं, और परभावोंको यह अपना रहा है तो यह मोहकी बात हुई ना? इस चेतनपर बड़ी जिम्मेंदारी है। उन ५ द्रव्योंका क्या बिगाड़ है? कहीं कुछ हो। धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन ४ का तो कुछ बिगाड़ ही नहीं है। रही पुद्गलकी बात सो पुद्गल जल जाय, मिट जाय, छिद जाय, भिद जाय, इसको ही तो हम आप जीव लोग बिगाड़ कहा करते हैं। उन पुद्गलोंकी ओरसे कोई देखे तो उनका क्या बिगाड़? ढेला रहे तो क्या, चूरा रहे तो क्या, लकड़ी रही तो क्या, राख रही तो क्या? बिगाड़ तो सारा जीवका है, और लोकमें किसीका भी बिगाड़ नहीं है। इस जीवका बिगाड़ विकार है। विकारसे ही बिगड़ा शब्द बिगाड़ है। इसने अपना बिगाड़ कर लिया, इसका सीधा अर्थ तो यही है कि इसने अपना विकार कर लिया। जो स्वभावसे, परिणमना था, जो शुद्ध वृत्ति होनी थी, उस शुद्ध वृत्तिसे विपरीत चला गया, यों यह जीव मोहवश अपना बिगाड़ किये चला जा रहा है।

जीवद्रव्यकी व्यवहारसे मूर्तिकता—इन ६ द्रव्योंमें आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म—ये ५ अमूर्त पदार्थ हैं, उनमें भी किसी पदार्थमें मूर्तिकताकी किसी रूपमें सम्भावना हो सकती है तो वह जीवद्रव्यमें। वह किस तरह? यद्यपि यह जीवद्रव्य निश्चयसे अमूर्त अखण्ड एक प्रतिभासमय है, अमूर्त है स्पष्ट। तो भी जब यह जीव रागादिक विकाररहित सहज आनन्द एकस्वभावरूप आत्मतत्त्वकी भावनासे रहित होनेके कारण इस जीवके द्वारा जो उपार्जित मूर्तिक कर्म है उस कर्मके संसर्गसे यह जीव बन्धनकी दृष्टिसे मूर्तिक भी होता है। देखो ना, जैसे कि यह जीव शरीरमें बँधा फंसा है, शरीर जले तो जीव भी जले, ऐसा बंधन किसी अन्य अमूर्त पदार्थमें है क्या? किसी पुद्गलके बँध जानेसे या जीवके बँध जानेसे कभी इस आकाशमें भी विचलितपना हो जाता हो, धर्म और अधर्म कालमें भी विचलितपना हो जाता हो, कहीं युक्तिमें उतरता है क्या? केवल जीवद्रव्य ही ऐसे बन्धनको प्राप्त हो गया। उस बन्धनकी दृष्टिसे यह जीवद्रव्य मूर्तिक कहा जाता है। तो उस कर्मके संसर्गसे यह जीव व्यवहार से अमूर्तिक भी होता है। पुद्गलद्रव्य तो स्पष्ट मूर्तिक है।

उपादेय तत्त्व—इन ६ द्रव्योंमें चेतक पदार्थ, जीव ही उपादेय है, क्योंकि अपने और परपदार्थके परिच्छेदन करनेमें समर्थ चेतनभावसे परिणत जीव पदार्थ ही हुआ करता है। अब इस ही चेतकताको जब हम इस दृष्टिसे निरखें कि जो संशय विपर्यय अनध्यवसायरहित निज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
का और परका परिच्छेदन रूप चेत रहा हो वह तो परमार्थतः चेतन है और इस प्रकार जो अपनेको न चेत रहा हो वह परमार्थतः अचेतन है। यहाँ जीव जीवमें ही घटाइये। जैसे किसी जीवको कह देते हैं कि यह तो अज्ञानी बन रहा है, यह तो अचेतन बन रहा है, जड़ हो गया है। तो जब इसकी चेतकतापर दृष्टि डालते हैं तो जहाँ शुद्ध चेतकता न हो उसे भी अचेतक कह सकते हैं। लेकिन चेतन और अचेतनका निर्णय स्वभावसे होता है, न कि परिणमनसे। इसीलिए तो यह बात कही गई है कि जिसमें चेतनेके सद्भावका स्वभाव हो वह है चेतन और जिसमें चेतनेके अभावका स्वभाव हो वह है अचेतन। जीवके सिवाय अन्य ५ द्रव्योंमें स्व और परका प्रकाश करने वाला चैतन्यभाव नहीं है, इस कारण ये शेष द्रव्य अचेतन हैं। इस प्रकार इन द्रव्योंमें मूर्त अमूर्त और चेतन अचेतनका विभाग बताया गया है।

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पुग्गल करणा जीवा खंधा खलु काल करणा दु ॥६८॥

सक्रिय व निष्क्रिय द्रव्य—इस गाथामें यह बताया गया है कि समस्त द्रव्योंमें से कौन-कौन द्रव्य सक्रिय हैं और कौन-कौन द्रव्य निष्क्रिय हैं? जीव और पुद्गलकाय, ये दो द्रव्य तो सक्रिय हैं और शेषके ५ द्रव्य निष्क्रिय हैं। धर्मद्रव्य जहाँ जैसा अवस्थित है वहाँ वैसा त्रिकाल अवस्थित है। यों ही आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है, उसमें तो अवस्थितता सुगम विदित हो जाती है और कालद्रव्य जो केवल एक प्रदेश प्रमाण है, लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर ठहरा है, वे भी जहाँ जो ठहरे हैं वहाँ वे अनादिसे ठहरे हैं और अनन्तकाल तक अवस्थित रहेंगे। केवल जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य ऐसे हैं जो सक्रिय हैं, चलते रहते हैं। इसमें सक्रियताका स्वभाव है। अष्टकर्मोंसे रहित सिद्ध भगवान यद्यपि सक्रिय अब नहीं रहे, एक प्रदेश हैं। इधर-उधर वे सरक नहीं सकते और उनके आत्मप्रदेशोंमें भी योग्य रीतिका उथल-पुथल नहीं हो सकता, लेकिन सक्रियताका स्वभाव जिसमें माना गया है वह स्वभाव तो त्रिकाल है, और सिद्धमें भी ऊर्द्ध गमन स्वभाव पाया जाता है। यद्यपि वे अपने सिद्ध क्षेत्र से ऊपर अर्थात् लोकसे बाहर त्रिकाल भी रंच भी नहीं पहुंचते, किन्तु जिनमें जो शक्ति, जो गुण है, जो स्वभाव है वह शाश्वत रहा करता है।

जीवकी सक्रियताका बहिरङ्ग साधन—एक प्रदेशसे अन्य प्रदेशपर पहुंचनेका कारणभूत जो परिस्पंद परिणमन है उसे क्रिया कहते हैं। इस लक्षणको घटित करते हुए निरखें कि कौनसे जीव सक्रिय हैं? ये जीव बहिरङ्ग साधनका निमित्त पाकर क्रियाशील बने रहा करते हैं? सक्रियताका स्वभाव होनेपर भी ये जीव पदार्थ यों ही अटपट गमन नहीं किया करते, क्रिया नहीं किया करते, किन्तु बहिरङ्ग साधन जैसे अनुकूल सहज प्राप्त हुए हैं उनको मात्र निमित्त पाकर यह जीव अपनी परिणतिसे अपने आपमें प्रदेशपरिस्पंदन करने लगता है।
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसार अवस्थामें हम आप चलते हैं इसमें प्रदेशोंसे प्रदेशान्तरपर पहुंचनेका कारणभूत बहिरङ्ग साधन है शरीर व कर्म। और जब यह जीव अष्टकर्मोंसे मुक्त होकर एक समयमें एकदम ऊपर चला जाता है उस समयकी क्रियामें साधन है बन्धका छेद। कोई चीज किसीमें फंसी हो और जब उसका वियोग हो तो फिर भी क्रिया बन जाती है। यों बहिरङ्ग साधनके साथ यह जीव सक्रिय है, और इस प्रकार बहिरङ्ग साधनके द्वारसे सक्रिय हुआ करता है।

पुद्गलकी सक्रियताका कारण—यह पुद्गल भी सक्रिय होता है। जो विशेष घटना होती है, विशेष क्रिया होती है, जो अभी न था अब हो गया, यों क्रियाएँ अट्टसट्ट नहीं होती हैं। बहिरङ्ग साधनका निमित्त पाकर होती हैं। ये पुद्गल स्कंध हैं। पत्ता उड़ता है तो उसमें बहिरङ्ग साधन हवा है। हाथसे डला फेंक दिया। डला बहुत दूर तक चला जाता है, उसमें बहिरङ्ग साधन हस्तप्रेरणा है, हस्तक्रिया है। कभी परमाणु अकेला ही गमन करे तो वहाँ भी बंध छेद या अन्य-अन्य योग्य वातावरण वहाँ बहिरङ्ग साधन हैं। इस प्रकार बहिरङ्ग साधनोंके द्वारा सद्भूत ये पुद्गल भी सक्रिय होते हैं। निष्क्रिय तो आकाश है, धर्मद्रव्य है, अधर्मद्रव्य है और कालद्रव्य हैं।

सक्रियता व निष्क्रियताका उपसंहारात्मक वर्णन—जीवके सक्रिय होनेका बहिरङ्ग साधन कर्म और नोकर्मके उपचय रूप पुद्गल हैं। सो वे जीव पुद्गलकरणक होकर क्रिया कर रहे हैं किन्तु सिद्ध भगवानकी निष्क्रियता पुद्गलकरणके अभावसे है। सिद्ध हो गए, सिद्ध क्षेत्रमें बिराज रहे, अब वे रंच भी प्रदेशसे प्रदेशान्तरको प्राप्त नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें अब पुद्गल वर्गणावोंका अभाव है। पुद्गलमें जो सक्रियता होती है उसमें बहिरङ्ग साधन उस परिणमनका निष्पादक कालद्रव्य है अथवा इन स्कंधोंमें परस्परमें एक दूसरेका प्रसंग कारण है। जैसे यहाँ शुद्ध आत्माके अनुभवसे कर्मपुद्गलका अभाव हो जाता है इस कारण सिद्ध जीवकी शाश्वत निष्क्रिय स्थिति सम्भव है। इस प्रकार पुद्गलमें भी निष्क्रियता कभी सम्भव नहीं है। सिद्धकी तरह पुद्गल निष्क्रिय नहीं हो पाते। इस प्रकार इस गाथामें सक्रियता और निष्क्रियताका विभाग बताया है।

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं हुंति तें मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥९९॥

मूर्तिक पुद्गल—जो जीवोंके द्वारा इन्द्रियोंसे ग्रहणमें आता है वह विषय तो मूर्तिक कहलाता है और शेष अर्थात् इन्द्रियग्राह्य पदार्थोंसे भिन्न समस्त अमूर्त पदार्थ कहलाते हैं। जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इन्द्रियके द्वारा तो उनके विषयभूत स्पर्श, रस, गंध, वर्ण स्वभाव वाले पदार्थ उपभोगमें ग्रहण किया करते हैं, परन्तु श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा वे ही अर्थ श्रोत्र इन्द्रियके विषयभूत शब्दोंके आकाररूपसे परिणत हो होकर ग्रहणमें आया करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
अर्थात् यह जीव स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्पर्शको भोगमें लेता है, रसना इन्द्रियके द्वारा रसको भोगता है, घ्राण इन्द्रियके द्वारा गंध भोगता है, चक्षु इन्द्रियके द्वारा रूप भोगता है और श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा शब्दोंको भोगता है। वे समस्त पदार्थ कभी जब स्थूल स्कंध बन जाते हैं तब तो यह इन्द्रियों द्वारा उपभोगमें आता है और कभी सूक्ष्म स्कंध हो जाता है और कभी परमाणु अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। इन स्थितियोंमें ग्रहणमें नहीं आता। लेकिन इन्द्रियों द्वारा पुद्गलोंको ग्रहण किये जानेकी योग्यता इनमें बनी हुई है। ये कभी ग्राह्य स्कन्धरूपमें आयें तब व्यक्त ग्रहण किये जा सकते हैं। इस कारण जीवके द्वारा ये पदार्थ ग्रहणमें आ रहे हों तो और ग्रहणमें न आ रहे हों तो मूर्तिक ही कहलाते हैं।

समस्त पुद्गलोंमें मूर्तिकता—पुद्गलद्रव्य मूर्तिक है, रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है और शेष समस्त पदार्थ अर्थसमूह चूंकि उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके अभावका स्वभाव है अर्थात् जीव धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं है, अतएव वे इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहणमें नहीं आ सकते। इनमें यह योग्यता भी नहीं है कि इन्द्रियों द्वारा ग्रहणमें आ सकें। अतएव ये पदार्थ अमूर्त कहलाते हैं। तो इन्द्रियां मूर्त पदार्थोंको ही ग्रहण करती हैं, किन्तु मनमें ऐसी योग्यता है कि यह मूर्तपदार्थोंको भी जान सके और अमूर्त पदार्थोंको भी जान सके, लेकिन जानेगा परोक्षरूपसे ही। जैसें अमूर्तके बारेमें अपनेको जान ही गए हैं, आकाश है, जीव है, धर्म अधर्म है, आगमसे जाना, अनुमानसे जाना। जिस किसी भी प्रकार जाना, मनसे जाना तो परोक्ष जाना।

नियतविषयता व अनियतविषयता, प्राप्यकारिता व अप्राप्यकारिता—वह मन अनियत विषय वाला है अर्थात् जैसे स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है, छू करके हम रस नहीं जान सकते हैं कि इसमें कैसा रस है? छू करके स्पर्श ही जाना जा सकता है। रसना इन्द्रियसे रस ही जाता जा सकता है अन्य बात नहीं। घ्राणसे गन्ध ही जाना जा सकता हैं अन्य बात नहीं। चक्षुइन्द्रियसे रूप ही जाना जा सकता है अन्य बात नहीं। श्रोत्र इन्द्रियसे शब्द ही जाने जा सकते हैं। जैसे इन इन्द्रियोंका विषय नियत है इसी प्रकार मनका विषय नियत नहीं है। कुछ भी जान ले, इस कारण मनको अनियत विषय वाला कहा है और यह अप्राप्यकारी है। जैसे स्पर्शनइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय, कर्णइन्द्रिय ये प्राप्यकारी हैं इसी प्रकार मन प्राप्यकारी नहीं है। देखो भिड़ करके जाननेका नाम प्राप्यकारी है। जब कानमें शब्द भरते हैं तो शब्द जाने जाते हैं, जब नासिकामें गंध भरती है तो गंध जानी जाती है। रसनासे रस जाना जाता, स्पर्शनइन्द्रियसे जब स्पर्श भिड़ जाता है तब स्पर्श जाना जाता है, यों चार इन्द्रियां प्राप्यकारी हैं, आँखे अवश्य अप्राप्यकारी हैं।

ज्ञानकी पद्धतिके जानके लिये दृष्टिका दृष्टान्त देनेका कारण—दूर रखी हुई चीजको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये आँखें भिड़े बिना जानती हैं और इसी कारण इस आत्माके उस ज्ञाताद्रष्टा स्वभावको बताने के लिए आँखोंका अनेक जगह उदाहरण लिया जाता है। जैसे ये आँखें दूर रहने वाली चीजों को बिना भिड़े जान जाती हैं, ऐसा कई जगह दृष्टान्त दिया है। जैसे ये आँखें दूर रखी हुई चीजको नहीं करती हैं, नहीं भोगती हैं, किन्तु जानती भर हैं, इसी प्रकार यह ज्ञान दूर रहने वाले पदार्थोंको न करता है, न भोगता है, किन्तु जानता मात्र है, यह उदाहरण दिया जाया करता है। तो ये आँखें भी अप्राप्यकारी हैं, ऐसे ही मन अप्राप्यकारी है। यह मन किसी पर-पदार्थसे भिड़कर नहीं जानता, यही मन उनके बारेमें अपने चिन्तनसे उन्हें जान जाता है। यह मन मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका साधनभूत है। मनके द्वारा श्रुतज्ञान भी होता है, मतिज्ञान भी होता है। हाँ मन मूर्त और अमूर्त पदार्थोंको जानता है। इस गाथामें मूर्तिकताका व अमूर्तिकताका स्वरूप बताया है—जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाये जायें उसे मूर्त कहते हैं और जिसमें ये न पाये जायें वे अमूर्त हैं। देखो यह आत्मा भी अमूर्त है, सबसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र है। ऐसा अमूर्त होकर भी यह आत्मा आज कितना भयशील है, बंधनमें पड़ा है? ये सारी स्थितियां इसकी बन रही हैं, यह सब बड़े विषादकी बात है। आत्माके स्वरूपको निरखो तो यह तो विशुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। इसमें कोई भय, शंका, खेद, विपदा किसीकी भी गुंजाइश नहीं है, लेकिन हम अपने ऐसे स्वरूपको सम्हालें तब ऐसी वृत्ति बने। हम अनादि मोहसे मलीमस होकर, परपदार्थोंमें ममता बनाकर अपने आपकी निराकुलताको प्राप्त नहीं कर पाते हैं, किन्तु जब भी इस जीवका सुधार होगा इस ही उपायसे सुधार होगा। विषयोंके सेवनसे, विषयोंकी प्रीतिसे सुधार नहीं हो सकता है। बात कठिन लग रही है, परंतु कोई क्षण ऐसा आयगा कि मोहका त्याग, परिग्रहका त्याग यह कुछ कठिन न लगेगा, बल्कि मोह और परिग्रहोंकी ओर उपयोग भी न ढूंककर देखेगा। हो दृढ़तासे अपने ज्ञानप्रकाशका अनुभव, अपने आपकी सम्हालसे ही अपना कल्याण है।

हमारा कर्तव्य—भैया! हम अधिकतर अपने इस अमूर्तस्वरूपकी ओर दृष्टि रक्खें। निजको निज और परको पर जाननेकी जब दृढ़ता नहीं रहती है तब ही आकुलतावोंकी उद्भूति होती है। अनादिसे लेकर अब तक जो आकुलतावोंका तांता लगा आया है, इसका कारण यह है कि इन समस्त परपदार्थोंसे भिन्न इस निजस्वरूपकी प्रतीति नहीं की। जब भी शरण होगा तो हमारे लिए हमारी विशुद्ध प्रवृत्ति ही शरण बनेगी। यहाँ तक ५ द्रव्यकायोंका वर्णन किया गया। अब इस अधिकारमें ५ अस्तिकायोंसे बचा गया जो एक कालद्रव्य है उस कालद्रव्यका व्याख्यान करते हैं।

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥१००॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कालद्रव्य—क्रमसे आने वाली जो समय नामकी पर्याय है वह तो व्यवहारकाल है और उस समय नामक पर्यायका आधारभूत द्रव्य निश्चयकाल है। इस कालके सम्बंधमें सीधा इस प्रकारसे जानो कि इस लोकाकाशमें जितने प्रदेश हैं उन सब प्रदेशोंमें प्रत्येक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है, वह एकप्रदेशी है। उस कालद्रव्यकी परिणति एक-एक समयके रूपमें प्रकट होती है। चूंकि समय एक परिणमन है ना, तो कोईसा भी परिणमन किसी द्रव्यके बिना नहीं होता, किसी न किसी द्रव्यका वह परिणमन कहलाता है। समय नामका यह परिणमन जिस द्रव्यका है, उस द्रव्यका भी नाम समय रख लीजिए या इन्हें काल कह लीजिए। काल नामक द्रव्य समयका आधारभूत है।

समयके अवबोधका साधन—यद्यपि व्यवहारकाल निश्चयकालकी पर्याय है, तो भी यह जान कैसे जाता है कि कुछ समय गुजर गया? जीव और पुद्गलके परिणमनसे यह जाना जाता है। इस कारण जीव और पुद्गलके परिणमनसे समयकी आविर्भूति कही गई है। जैसे घड़ीकी सूई कुछ सरक गई, लो एक मिनट हो गया। एक मिनटका जो समय गुजर गया उस समय गुजरनेका ज्ञान हमें सूईसे हुआ। सूर्य एक ओरसे उदित होकर दूसरी ओर अस्तको प्राप्त हो गया, इससे हमें ज्ञान हुआ कि एक दिन बीत गया। इस समयको ये पुद्गलके परिणमन किया नहीं करते, केवल ये जता देने वाले हैं। इस समयका जो अविभागी अंश है अर्थात् एक-एक समय है उस समयकी उत्पत्ति काल नामक निश्चय द्रव्यके परिणमनसे हुई है। जीव और पुद्गलका परिणमन तो बहिरंग निमित्तभूत द्रव्य कालके होनेपर हुआ है, इसीलिए जीव पुद्गलका परिणाम द्रव्यकालके निमित्तसे हुआ है, यों कहा जाता है।

कालके अवगम व उत्पादका प्रसंग—देखिये परस्परका सम्बन्ध—घड़ीकी सूई जो थोड़ी सरकी है उसमें जो परिणमन हुआ है वह निश्चयकालके समय नामक परिणमनका निमित्त पाकर इस सूईमें क्रिया हुई है और इस सूईकी क्रियाको जानकर उसके निमित्तसे हमें समयका बोध हुआ है कि इतना समय हुआ है। एक घंटेमें जितने समय होते हैं उन समयों के निमित्तसे सूई सरकी और सूई सरकनेके निमित्तसे हमें समयका ज्ञान हुआ। तात्पर्य यह है कि व्यवहारकाल जीव और पुद्गलके परिणमनसे ज्ञानमें आता है, परन्तु पुद्गलका परिणाम निश्चयकालकी परिणतिके निमित्त पाकर उत्पन्न होता है। इस युक्तिसे ज्ञानमें आया व्यवहार काल तो क्षणिक है अर्थात् समय मिनट घंटा ये तो विनश्वर हैं, नष्ट होते रहते हैं, उनमें जो सूक्ष्म पर्याय है समय नामकी वह तो उतनी ही मात्र है वह भी नश्वर है, पर निश्चयकाल नित्य है। निश्चयकाल अपने गुण और पर्यायोंका आधारभूत है, इसलिए सदाकाल अविनश्वर है।

कालमें द्रव्यत्व व अकायत्व—इन ५ अस्तिकायोंमें कालको नहीं बताया है। काल-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य एकप्रदेशी है, इसलिए अस्तिकाय नहीं है। अस्तिकाय उसे कहते हैं जिसमें बहुत प्रदेश हों। जैसे ये दिखने वाले स्कंध अस्तिकाय हैं—जैसे जीव, धर्म आदिक द्रव्य ये प्रदेशके संचय रूप हैं, परन्तु कालद्रव्य एक ही प्रदेशी है। लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और वह रत्नोंकी राशिकी तरह है। जैसे रत्नोंका ढेर इकट्ठा पड़ा है तो एक रत्नमें दूसरे रत्नका प्रवेश नहीं है, अवगाह नहीं है। इसी प्रकार यह कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर बहुत घने चिपके पड़े हुए हैं, फिर भी किसी कालद्रव्यमें किसी दूसरे कालद्रव्यका प्रवेश नहीं है। निश्चयकाल है अविनाशी और व्यवहारकाल है क्षणिक। अब कौन नित्य है, कौन क्षणिक है ? इस प्रकारके विभागको बतानेके लिए आगेकी गाथा आ रही है।

कालोत्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥१०१॥

कालद्रव्यका प्रतिपादन—कालद्रव्यका यह वर्णन बहुत कुछ कठिनसा लग रहा है। इसमें कुछ प्रत्यक्षभूत पदार्थकी तरह समझ नहीं बन पाती, अतएव यह विषय कुछ कठिन प्रतीत होता है। किन्तु सर्वज्ञदेवके ज्ञानमें जो कुछ जाना गया और उसका प्रतिपादन दिव्य-ध्वनिके रूपमें हुआ। उसकी परम्परासे जो ज्ञान चला आया है, जो पदार्थ है उस सद्भूत पदार्थ का वर्णन तो नहीं छोड़ा जाता। तब सब कुछ बताया जा रहा है कि इस लोकमें यह है, यह भी है, तो कालद्रव्य भी तो है, उस कालद्रव्यका वर्णन कैसे छोड़ा जाय ? उस ही कालको बता रहे हैं कि यह कालद्रव्य किस प्रकारसे है, और किस प्रकारसे परिणत होता है।

निश्चयकाल—अर्थपरिणमनमें कारण जो हो कोई द्रव्यविशेष हो वह काल है वह काल है, इस तरह सदा व्यपदेशको प्राप्त होता है, वह अपने सद्भावको प्रकट करता हुआ नित्य है, जिसके बारेमें हम आप रहा करते हैं कि यह समय है यह भी समय है, यह काल है। अनेक कालद्रव्य होकर भी, अनेक समयपरिणमन होकर भी उनमें जो यह काल है ऐसी एकता को लिए हुए जो व्यपदेश होता है वह व्यपदेश निज कालके सद्भावका व्यपदेश है और प्रकट करता है कि यह नित्य है, और जो उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाया करता है उसका नाम है समय नामकी पर्याय। जो नष्ट होता हुआ चित्तमें समझमें बैठता है वह तो है पर्याय समय और जिसकी प्रति समय सत्ता रहती है वह है निश्चयकाल।

व्यवहारकाल—वह व्यवहारकाल यद्यपि क्षणभंगी है, फिर भी अपनी संतान बराबर बनाये है। यह समयोंके संतानकी वजहसे तो मिनट घंटा वगैरा बने हुए हैं। तो समय यद्यपि क्षण-क्षणमें नष्ट होता जा रहा है, फिर भी इसकी संतान परम्परा बिना विच्छेद हुए बराबर बनती चली जा रही है, और फिर नय बलसे व्यवहारनयसे हम उस समयसे दीर्घकाल तक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ठहरे हुए कहने लगते हैं। जैसे यह एक घंटेका समय है तो उस एक घंटेके समयमें सूक्ष्म व्यवहारदृष्टिसे तो एक-एक समय नामकी पर्याय है, लेकिन स्थूल रूपसे हम एक घंटेको ग्रहण में ले लेते हैं। यह इतना लम्बा समय है और फिर इस ही समयका समय संतानसे बढ़ा-बढ़ाकर अपनी बुद्धिमें आवलीसे लेकर सागरों पर्यन्त तकका व्यवहार बना लेते हैं। सेकेन्ड, मिनट, पहर, दिन, रात, महीना, वर्ष, युग, पूर्वांगपूर्व चलते जाइए, फिर पल्य, फिर उपमासे बातें चलने लगती हैं। सागर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कल्पकाल इस प्रकार बहुत लम्बे समयको हम अपनी बुद्धिमें ले लिया करते हैं।

निश्चयकाल व व्यवहारकालका लक्षण—यहाँ यह बात बतायी है कि निश्चयकाल तो नित्य है, क्योंकि वह द्रव्यरूप है और व्यवहारकाल क्षणिक है, क्योंकि वह पर्यायरूप है। जो अनादि अनन्त है, समयादिक कल्पनावोंके भेदसे रहित है, परमाणुके द्रव्यरूपसे व्यवस्थित है, जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं है, ऐसा अमूर्तिक समय आदिक पर्यायोंका आधारभूत निश्चयकाल है, और उस कालद्रव्यकी पर्यायें जिसकी आदि है, जिसका अन्त है ऐसे समय घड़ी दिन विवक्षित कल्पनावोंके भावरूप व्यवहारकाल होता है। इस प्रकार कालद्रव्यका कुछ वर्णन किया है। अब इस कालद्रव्यके सम्बंधमें यह बात बता रहे हैं कि इसमें द्रव्यास्तिकाय-पना नहीं होता है। इस गाथाके साथ यह अन्तराधिकार पूर्ण होगा और उसके बाद शिक्षा रूपमें दो गाथाएँ आयेंगी।

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥१०२॥

कालद्रव्यकी अकायताका कारण—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये द्रव्य-पनेका लक्षण पाये जानेसे द्रव्य कहलाते हैं। इस प्रकार काल भी द्रव्य है, किन्तु उसके काय-पना नहीं है। द्रव्य उसे कहते हैं जो अपनी पर्यायोंको प्राप्त करे, प्राप्त करता रहे, जिसमें पर्यायें बनी रहें उसे द्रव्य कहते हैं। सो कालद्रव्यमें भी समय नामकी पर्याय बनती रहती है। जब हम पूछें कि द्रव्य कितना होता है? तो उत्तर आयगा कि द्रव्य ६ होते हैं। काल भी द्रव्य है, किन्तु जैसे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाशमें अनेक प्रदेश हैं और इस कारण वे अस्तिकाय कहलाते हैं, वे पिण्डरूप हैं, बहुप्रदेशी हैं, इस प्रकारसे कालाणु बहुप्रदेशी नहीं है, यद्यपि इसकी गणना असंख्यात है। लोकाकाशमें जितने प्रदेश हैं उतने ही ये कालाणु हैं, लेकिन हैं अपने एक प्रदेशमें, अपने स्वरूपको पूर्ण करने वाले, इस कारण कालद्रव्यको अस्ति-काय नहीं कह सकते हैं। यही कारण है कि पञ्चास्तिकायके प्रकरणमें इस कालद्रव्यका मुख्य रूपसे वर्णन नहीं किया गया।

पञ्च अस्तिकायोंके वर्णनके प्रसंगमें कालकी वर्णनीयताका हेतु—इस ग्रन्थमें मुख्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपसें जीव और पुद्गलका परिणाम बताया और उस परिणमनसे काल नामक पदार्थ ज्ञानमें आया करता है। इस कारणसे जीव पुद्गलपरिणामसे जाना गया यह कालद्रव्य, द्रव्यरूपसे सिद्ध किया है और इस पंचास्तिकायके मध्यमें इसे द्रव्यरूपसे अन्तर्भूत कर दिया है। अर्थात् इस ग्रन्थका नाम पंचास्तिकाय है, इसमें ५ अस्तिकायोंका वर्णन किया गया है, लेकिन साथ ही यह जतानेके लिए कि समस्त पदार्थोंका परिणमन कालद्रव्यके परिणमनके निमित्तसे होता है। यह कालद्रव्य भी पंचास्तिकायके वर्णनके बीच आया है। इस प्रकार द्रव्यरूपसे, संख्या-रूपसे द्रव्य ६ होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जो स्वरूप अपनी सब जातिमें रहे और उसे छोड़कर अन्यमें न रहे यही जातिका लक्षण है। इस जातिकी दृष्टि से ये ६ द्रव्य हैं। जीवमें सब जीव आ गए, पुद्गलमें सब पुद्गल आ गए, कालमें सब काल आ गए। धर्म, अधर्म, आकाश ये तो सब एक एक ही हैं। इस प्रकार षट्द्रव्योंके समूहरूप इस लोकका वर्णन किया गया है।

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥१०३॥

शास्त्रपरिज्ञानका लाभ—पंच अस्तिकायोंका वर्णन करनेके बाद आचार्यदेव यह बतला रहे हैं कि जिसमें ५ अस्तिकायोंका संग्रह है ऐसे प्रवचनोंके इस सारभूत निबंधको जान करके जो पुरुष राग और द्वेषको दूर कर सकता है वह दुःखसे छुटकारा पा लेता है। पाँच अस्तिकायोंके अलावा और कुछ भी प्रतिपादित न होकर शास्त्रोंमें षट्द्रव्योंसे अतिरिक्त और किसका वर्णन मिलेगा? कुछ अन्य है ही नहीं। तो यह पंचास्तिकायका जो संग्रह है यह भी प्रवचनोंका सार है। प्रवचन काम आगमका भी है, परमागमका सारभूत यह कथन है। जो पुरुष इस ग्रन्थको लिखे हुए शब्दोंके अर्थको अर्थीरूपसे जानकर अपने आपमें घटित करता हुआ इस उपदेशमें जो अभीष्ट प्रयोजन है उसको चाहता हुआ समझकर जो अपने स्वभावका निश्चय करेगा वह पुरुष दुःखोंसे छुटकारा पा लेता है।

संसारके दुःख और उनके शमनका अधिकार—संसारमें दुःख इस प्रकार है जैसे अग्निसे उबलता हुआ जल हो। जैसे अग्निसे उबलता हुआ जल खलबलाया करता है, वह अपनेमें स्थित रह नहीं पाता है और ऐसा भी नहीं है कि अपनेसे अलग कहीं बाहरमें जल स्थित हो जाता हो। न अपने में स्थित है, न बाहर स्थित है, किन्तु दुःस्थ है, अपने ही अगल बगल खलबलाता रहता है। ऐसे ही इस संसारके दुःख जब इस जीवपर आते हैं तो इस जीवका यह परिणमन न अपनेमें स्थित है, न किसी बाहरमें चला गया, किन्तु अपने आपके प्रदेशोंमें खलबल करता हुआ यह बना रहता है। ऐसे दुःखसे भी छुटकारा वह पुरुष पा लेता है जो निजस्वभावको भली प्रकार जानकर उस अपने स्वभावको ग्रहण करता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संतापशमनका उपाय—देखिये अग्निसे खूब जाज्वल्यमान (जलते हुए) उस जलको शीतल करनेका हम आप क्या उपाय करते हैं कि जो आग लगी है उसे अलग करदें और नई आग उसमें न डालें तो वह अत्यन्त उबलता हुआ पानी शीतल हो जाता है। ऐसे ही इस संसार अवस्थामें हम दुःखसे उबल रहे हैं। इस दुःखको शमन करना है तो यही उपाय करना होता है कि पहिलेके बंध तो अलग करदें और नवीन बंध इसमें डालें नहीं तो यह दुःख शान्त हो जायगा। जितने भी बन्धन हैं वे स्नेहसे हैं। किसी भी परद्रव्यसे स्नेह न हो तो वहाँ कोई बन्धन ही अनुभवमें नहीं आता। गाय बछियासे बँधी है, बछिया गायसे बँधी है, गायसे मालिक बँधा, है यह परस्परका बन्धन स्नेहसे है। यह तो एक जो प्रकट व्यवहारमें समझमें आ रहा है, उसकी बात है। यह जीवास्तिकायमें जो स्नेहभाव उत्पन्न होता है उसका निमित्त पाकर नवीन कर्म बन्धनको प्राप्त होते हैं। यह सर्व स्नेहका बन्धन है। यदि पूर्ण बन्धको दूर करना है, भावी बंधको आने नहीं देना है तो यह कर्तव्य होगा कि अपने को स्नेहरहित बनावें।

संतापशमन—जैसे जघन्य स्निग्ध गुणके अभिमुख जो परमाणु है उस परमाणुका बन्धन नहीं होता, ऐसे ही स्नेह जीर्ण शीर्ण हो जाय तो उस जीवका भी बन्धन न होगा। यह बन्धन कैसे दूर हो, उसका उपाय यही है कि रागद्वेषकी परिणतिका विनाश किया जाय। यह रागद्वेष परिणति कर्मबंधकी संततिको बढ़ाने वाली है। जो पुरुष इस रागद्वेष परिणतिको शिथिल करता है उसका वह स्नेह जिसे चिकनाई कहो, लेश्या कहो, जीर्ण शीर्ण हो जाती है, और यह चिकनाई जब दूर हो गई तो जैसे जघन्यगुणकी चिकनाई वाले परमाणुका बंध नहीं होता ऐसे ही इस जीर्ण स्नेह वाले आत्माका बन्धन न होगा। जब बन्धन न होगा अर्थात् पूर्वबंध तो मिट जाय और भावी बंध न आये तो इसका दुःख छूट जायगा। जैसे कि नई आग न लगाये, पुरानी आग दूर करदे तो वह खलबलाहट वह संतप्तता दूर हो जाती है।

हितप्रयोगकी आवश्यकता—हाँ लो देखो भैया! सबसे बड़ा कठिन काम तो यही है ना कि रागद्वेषकी वृत्तिको दूर करदें। उसका उपाय क्या है? दो पहलवान थे, एक था तगड़ा और एक था अत्यन्त कमजोर। और वह हँसी मजाक करने वाला था। किसी प्रसंगमें तगड़े पहलवानने कहा कि हमसे कोई भी लड़ सकता है। तो वह कमजोर पहलवान बोला कि हम तुमसे लड़ेंगे, तुम्हें तो हम खड़े होते ही होते पछार देंगे, मगर शर्त एक यह है कि जब तुम हमारे पास आना तो गिर जाना। अरे फिर पछारना ही क्या है? यही तो एक कठिन काम है। यह काम कैसे बने? उसका उपाय क्या है? उसका उपाय यह है कि तत्काल जो कुछ भी गुजर रहा हो उस प्रसंगमें अपनी विवेक ज्योतिको जगा लें, विकसित कर लें। अर्थात् अपने वर्तमानकालमें जो विभावपरिणमन होते हैं उन विभावपरिणमनोंसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भिन्न अनादिनिधन शुद्धज्ञायक स्वरूप यह मैं आत्मतत्त्व हूं—इस प्रकार इन विभावपरिणमनों से अपने आत्माको जुदा प्रतीतिमें ले लें, यही है रागद्वेष परिणतिके मिटानेका उपाय। यह बात केवल बातमें रहे तो रागद्वेष परिणति नहीं मिटती। यह मर्म प्रयोगरूपमें आये तो राग द्वेषकी परिणति मिटती है। यह काम प्रयोगसाध्य हुआ करता है।

दृष्टान्तपूर्वक हितप्रयोगकी आवश्यकताका समर्थन—बच्चोंको तैरनेकी कला पुस्तकों से सिखा देनेके बाद भी उन्हें नदीमें कूदनेको कह दिया जाय तो कूदकर वे तैर नहीं सकते। भले ही उन्होंने वचनोंसे तैरना खूब सीखा है किन्तु तैरना तो प्रयोगसाध्य बात है। इस ही प्रकार अपने आपके सम्बन्धमें जो भी उपदेश मिले हैं उन्हें केवल बातों तक ही रक्खें तो वह अनुभूति नहीं जगती। अनुभूति तो प्रयोगसाध्य बात है। ज्ञान और ज्ञानकी दृढ़ता, ज्ञानकी स्थिरता यही तो एक प्रयोग है। जो पुरुष सर्वप्रयत्नोंसे अपने शुद्ध अंतस्तत्त्वको दृष्टिमें रखते हैं वे पुरुष रागद्वेषकी परिणतिका विनाश करते हैं।

कष्टमें साहस—और भी देखो, जिसे अपनेपर बुखार गुजर जाय तो उस छाये हुए बुखारमें यह रोगी अपनेमें कैसी हिम्मत बनाता है? दूसरे लोग देखकर घबड़ा जायें, बड़ा कठिन बुखार है, पर जिसपर गुजरती है वह अपना अंतःसाहस बनाये है सहनेका, क्योंकि खुदपर गुजर रही है ना। केवल मालूम कर ले यह कि मुझको अब बड़ा तीव्र बुखार होगा और अब यह टाइफाइड बन जायगा तो उसको कितनी घबड़ाहट होती है और जब रोग आ जाय तो उसको सहनेकी शक्ति उसमें आ जाती है। जो भी कष्ट आयें उसे बराबर सहे, लंघन किये पड़ा रहे, ये सब बातें उसके लिए आसन हो जाती हैं। हमपर आ रहे हैं ये रागद्वेष विभावपरिणमन, अनुभूत हो रहे हैं, पर उनको ही तो देख-देखकर हमें उनसे न्यारा होकर अपने आत्मतत्त्वके देखनेका साहस बनाना है, न कि उन विभावपरिणमनोंसे पीड़ित होकर कायर बने रहना है। यह बात तो अब तक बनी ही रही तभी तो अनादिसे अब तक यह संसार चला आ रहा है।

भेदविज्ञानका प्रयोग—ये विकार जो मुझमें अनुभूयमान हो रहे हैं ये कर्मबन्धोंकी संततिसे हुए हैं। ये नये-नये आते हैं। जैसे बीजारोपण होता है। नये-नये वृक्ष लगाये जा रहे हैं, ऐसे ही नये-नये विकार वृक्ष इसमें लगाये जा रहे हैं। यह कर्मबन्ध संतति अनादिकालके रागद्वेष परिणामोंके कारण हुई है। और इस विभावमें, कर्मबन्धनमें यह अनादि संतति, परस्परका निमित्तनैमित्तिक भाव, कार्यकारणभाव यह चल रहा है। उससे जो यहाँ यह विकारारोपण हुआ है इन विकारोंको ही दृष्टिमें रखकर ये मैं नहीं हूं, मैं इनसे भिन्न शाश्वत चित्स्वरूप पदार्थ हूं, इस प्रकार अपनेको इस वर्तमान कालमें अनुभूयमान विभावोंसे न्यारा जो अपनेको निरखेगा वही इन रागद्वेषोंका विनाश कर सकेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्याणमय पुरुषार्थ—सब पुरुषार्थोंमें एक निचोड़रूप सार पुरुषार्थ यह है कि वर्तमान विभावपरिणामोंसे न्यारे अपने आपके उस चैतन्यस्वरूपकी प्रतीति बनाये रहना। इस पुरुषार्थमें सब तत्त्व आ जाते हैं। सब तत्त्वोंका जो प्रयोजन है वह प्रयोजन आ जाता है। प्रतिक्रमण और प्रायश्चित इस ही एक वर्तमानके उपायसे गर्भित है। जब वर्तमानमें आये हुए विकारोंसे भिन्न अपने धाममें हम पहुंचते हैं उपयोग द्वारा तो इसका अर्थ यही हुआ ना कि पूर्व कालमें जो कर्मबन्धन किया था वह कर्मबन्धन अब निष्फल हो रहा है। इसका अर्थ यही हुआ ना कि भावीकालमें हम पीड़ित हो सकते थे, ऐसा कर्मबन्ध होनेका था वह अब नहीं हो रहा है। एक मात्र पुरुषार्थ शान्तिके लिए हम आपको यह करना है।

स्वरूपनिर्णयमें उत्थान—उत्थानकी बातें तभी बनती हैं जब हम अपनेको ऐसा निश्चव कर लें कि हम स्वरूपसे अत्यन्त विशुद्ध चैतन्यस्वभावी सत् हैं। केवल एक चेतनाका ही कार्य करने वाला यह मैं एक आत्मा परमात्मतत्त्व हूं, ऐसा अपने स्वभावमें निश्चय हो तो ये सब बातें फिर बनने लगती हैं और इस विधिसे यह जीव दुःखोंसे छूट जाता है। मैं चैतन्यस्वभावी हूं, यह निश्चय भी कहीं अन्यत्र नहीं करना है, अपने आपमें निश्चय करना है और वह अपने आपमें इस निज जीवास्तिकायके अन्तर्गत है। देखिये निजकी बात भेदरूपसे कही जा रही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके भेदकी दृष्टिसे यह मैं भी अपने उपयोगमें विभिन्न जंचने लगता हूं और तब फिर यह षट्कारक प्रक्रिया चलने लगती है।

पदार्थ, अस्तिकाय, द्रव्य व तत्त्वके विश्लेषणमें दृष्टान्त—सिद्धान्त ग्रंथोंमें अपने आत्मा के सम्बंधमें दो चार जगह बताया है जीवद्रव्य, जीवास्तिकाय जीव पदार्थ और जीवतत्त्व। जोव हैं ये चारों, फिर इनके साथ पदार्थ द्रव्य तत्त्व अस्तिकाय ये जुदे-जुदे बोलनेकी क्या जरूरत है? बात यह है कि हम किसी भी पदार्थको निरखते हैं तो चार दृष्टियोंसे निरखा करते हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। यह चौकी है तो जब इस पिण्डदृष्टिसे निहारते हैं तो यह चौकी पिण्डात्मक नजर आयी। जब क्षेत्रदृष्टिसे निहारते हैं तो यह चौकी इतनी लम्बी चौड़ी ऊँची इस आकार नजर आयी। जब हम इस चौकीकी परिणति कालकी दृष्टिसे निहारते हैं तो यह पुरानी है, कमजोर है, पुष्ट है—ये सब बातें नजर आती हैं और जब इस चौकीकी भावकी दृष्टि से देखते हैं तो ये स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आदिक रूपसे दिखती है।

जीवमें पदार्थ, अस्तिकाय, द्रव्य व तत्त्वका विश्लेषण—ऐसे ही जब हम इस जीवको पिण्डदृष्टिसे देखते हैं अर्थात् द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं अर्थात् द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो यह गुणपर्ययवान जीव पदार्थ नजर आता है। जब हम अपने आपको क्षेत्रकी भूमिकासे देखते हैं तो यह असंख्यातप्रदेशी अस्तिकाय है, यों जीवास्तिकायके रूपसे दृष्टिमें आता है। इसको ही जब हम कालदृष्टिसे निरखते हैं तो इसने अनेक पर्यायें पायी दिखीं, यों हम इसे जीवद्रव्यके रूपमें निर-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खते हैं और जब भावदृष्टिकी प्रधानतासे निरखते हैं तो यह तो एक चैतन्यस्वरूप जो भी इसका स्वभाव है उस स्वभावको लक्ष्यमें लेकर हम इसे जीवतत्त्वके रूपमें निरखते हैं तो यह मैं चैतन्यस्वभावी आत्मा हूं, सो यह मैं स्वयं ऐसा हूं और यह मैं जीवास्तिकायके अन्तर्गत हूं अर्थात् अपने प्रदेशोंमें ही बसने वाला हूं। ऐसे इस स्वभावको जो पुरुष जानता है वह संसारके इन समस्त दुःखोंको दूर कर देता है। पञ्चास्तिकायके प्रथम अधिकारमें इसकी समाप्तिसूचक ये दो गाथायें चल रही हैं। अब दुःखका छूटना किस क्रमसे होता है, इसका वर्णन इस दूसरी गाथामें कर रहे हैं।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुग्गमणुज्झदो णिहदमोहो।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥१०४॥

शास्त्राध्ययनका फल—जो जीव विशिष्ट स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा इस नित्य आनन्द-स्वभावी शुद्ध जीवास्तिकाय नामक पदार्थको जानता है, मानता है और उसका ही अनुलक्षण करके अनुकरण करके उसका आश्रय करता है, उस रूपसे परिणमनमें उद्यमी बनता है वह पुरुष मोहको दूर करके रागद्वेषको प्रशान्त करके संसारसे निवृत्त हो जाता है। इसमें ज्ञान श्रद्धान और चारित्रकी शिक्षा दी गई है। यद्यपि ज्ञान, सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्वका साथ पानेपर होता है यों साथ हुए तो भी वहाँ भी जो सम्यग्दर्शनके पूर्व ज्ञान होता है उस ज्ञानकी भी बड़ी महिमा है। ज्ञान द्वारा जो अपने आपका निर्णय करता है तो जब वह निर्णय प्रथम बार अनुभवके रूपमें उतर आता है—ओह बिल्कुल सही है, यही तो है तब वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है और फिर इस अनुभूतिके बाद इस प्रकारका आत्मोपयोग न भी हो तो भी वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इस शास्त्रका प्रयोजनभूत, अर्थभूत तो यह शुद्ध चैतन्यस्व-भावी आत्मा है। इस अपने आपको जो कोई भी जीव जानता है और फिर उस ही अर्थको उसही स्वभावसे अनुगमन करनेके लिए उद्यमी होता है उसके दर्शनमोहनीयका विनाश हो जाता है।

सम्यग्ज्ञानमें व्यक्त परिचय—हमारे उन्नयनका बाधक है मोहभाव और मोहभावमें प्रबल है दृष्टिमोह। अर्थात् जो सम्यग्दर्शनका लोप करे ऐसा मिथ्या अभिनिवेश यही है प्रबल बन्धक। तो अपने आपके अनुगमनमें उद्यमी पुरुषके दृष्टिमोहका विनाश होता है उससे होता है स्वरूपका परिचय और अब जिसके बारेमें पहिले तो वह अव्यक्तरूपसे आत्माको कह रहा था, अब इस ही आत्माको यह स्वसंवेदन प्रत्यक्षीभूत ढंगसे अपने आत्माको जानने लगा, कहने लगा। स्वरूपपरिचय हो गया ना, जिससे अधिक परिचय होता है। लोग उसमें यह-यह ज्यादा बोला करते हैं और जिससे उपेक्षा होती है, साधारण परिचय होता है उसके सम्बन्धसे वह वह की आवाज ज्यादा हुआ करती है। अब यहाँ हुआ है ज्ञानीको स्वरूपपरिचय। उस

Version 1

स्वरूपपरिचयसे अब ज्ञानज्योति प्रकाशमान हो जाती है, प्रकट हो जाती है तब इसका राग और द्वेष शान्त होने लगता है । मोह मिटा कि रागद्वेष स्वयं शान्त हो जाते हैं ।

मोहक्षयसे रागद्वेषका विनाश— वृक्षकी जड़ कटी तो यह गिरा हुआ वृक्ष जैसे सूखनेके उन्मुख रहता है और कुछ दिनोंमें वह पेड़ सूख जाता है । ऐसे ही मोहके दूर होते ही, अज्ञानके दूर होते ही ये रागद्वेष सूखने लगते हैं । जहाँ रागद्वेष शान्त हुए वहाँ भावी बंध और पूर्वबन्ध नष्ट हो जाता है । अब पुनः बंधके कारण रहे नहीं, राग द्वेष रहे नहीं तो यह जीव अपने स्वरूपमें स्थित होकर नित्य प्रतापशील रहता है । अनन्तज्ञान अनन्तदर्शनके विकाससे सर्वका ज्ञाताद्रष्टा रहे और अपने अनन्त आनन्द अनन्त शक्तिमय होनेसे सदा निराकुल रहे, ऐसा अनन्त प्रताप अपने आपके चैतन्यस्वभावमें शुद्धविधिसे उपयोगमें परिणत होनेका प्रताप इस जीवके अनन्तकाल तक रहता है ।

अधिकारसमाप्तिपर उपसंहार—यों जो कुछ ज्ञान पाया, जहाँ तक पाया हम आपने उस सिलसिलेमें इस शास्त्रका कितना उपयोग हो रहा है, जिस उपयोगपथसे चलकर हम मुक्ति जैसी स्थितिके निकट हो जायें, यों निहारिये और स्ववृत्तिमें उद्यत होइये । इस प्रकार इस अधिकारमें कल्याणकी प्राप्तिका उपायभूत यह पंचास्तिकायोंका प्रतिपादन किया है ।

॥ इति पञ्चास्तिकाय प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ॥